सिद्ध योग

संस्थापक संरक्षक एवं सम्पादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

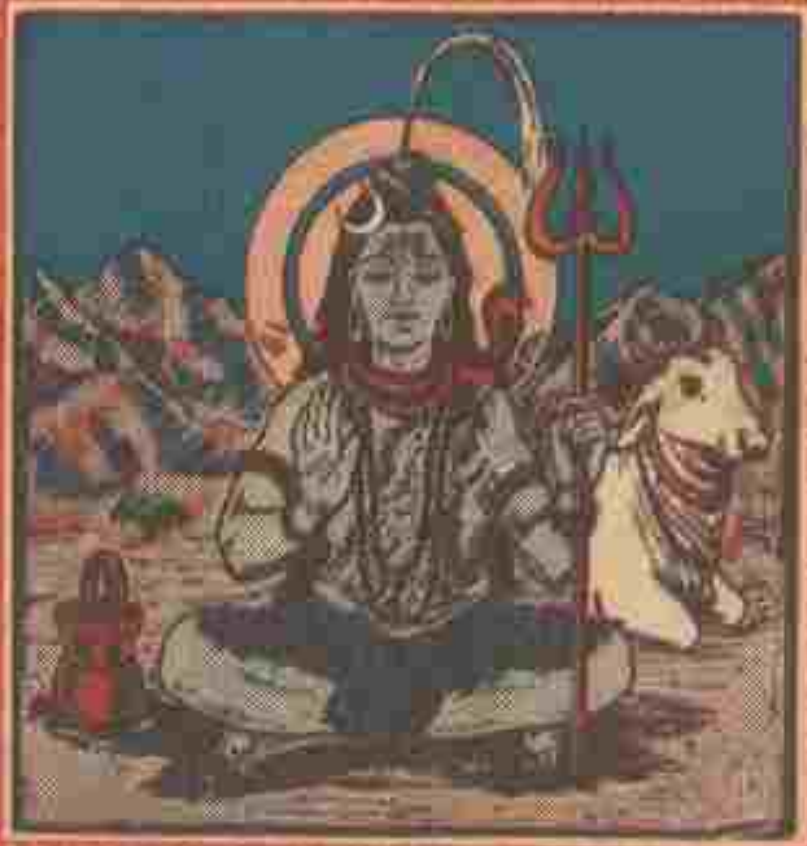

श्री सिद्ध गुरु प्रकाशन

प्रकाशक

इस अंक में—

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	विश्वमन्तर्यामं	.....	१
२.	श्री पतञ्जलि का 'पुरुष' विशेष (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त-श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२
३.	कुण्डलिनी-जागरण	आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा	५
४.	इस ओर से उस ओर (कविता)	श्री रामदेव तिवारी	१८
५.	ब्रह्मपद की प्राप्ति का साधन—योग	डा० श्री विष्णुदत्त शर्मा	२०
६.	शिव ही ब्रह्म है ब्रह्म ही शिव है	श्री ओमप्रकाश पालीवाल	२५
७.	क्रिया-योग	श्री गिरीशदेव शर्मा	३०
८.	योगाचार्य भगवान् बुद्ध	डा० श्री विजयसिंह	३३
९.	श्री गुरुदेव की आज्ञा-पालन ही सर्वस्व है	ब्र० श्री वीरेन्द्रस्वरूप	३७
१०.	योग में शुद्धि आवश्यक	महात्मा श्री विश्रामसिंह	४३
११.	गोपाल चरवाहा और श्री गुरु-वचन	श्री केशव उपाध्याय	४५
१२.	यमम् पुण्यम् फलम्-सोमम्	संकलित	५२
१३.	आश्रम समाचार	टाइटिल	३
१४.	निष्काम-कर्म	टाइटिल	४

वर्ष १०
अङ्क ८

संयुक्त सम्पादक
दिव्य
फोन ६३१६८

वार्षिक मूल्य १२ ६०, एक प्रति १·५० पैसे मात्र

सिद्ध योग

वर्ष १०
अङ्क ८

ध्यायं ध्यायं योगिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्,
महतो मृत्योर्मुखं विवरतो, मुक्तिं याप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविधवरान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

नवम्बर
१९७७

ॐ विश्वसनन्तरूपं ॐ

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वसनन्तरूपं ॥

अर्थात्

हे प्रभो ! आप आदिदेव (और) सनातन पुरुष हैं । आप इस जगत् के परम आश्रय और जानने वाले (तथा) जानने योग्य और परम धाम हैं । हे अनन्तरूप ! आप से (यह सब) जगत् व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण है ।

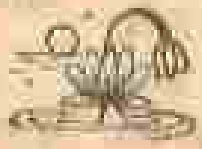

हमारा विशेष लेख —

श्री पतंजलि का 'पुरुष' विशेष !

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

>हर्षवात् पतञ्जलिदेव ने अपने अनुभवों की अक्षय निधि योग-सूत्रके द्वारा प्रकट की है श्री पतञ्जलिदेव के योग-सूत्र संसार में 'योग-दर्शन' नाम से विख्यात हैं। योग-दर्शन षट् दर्शनों में एक महत्वपूर्ण दर्शन है। इसके अध्ययन करने वाले व्यक्ति स्वरूपानुभूति की ओर अवश्य ही बढ़ जाते हैं। श्री पतञ्जलिदेव जी ने अपने इस दर्शन में प्रकृति पुरुष विवेक को ही प्रधानता दी है। उनका लक्ष्य है बुद्धि-बोध-आत्मा-पुरुष स्वरूप प्रतिष्ठित हो जाये। अर्थात् वह अपनी अमर साधना के फलस्वरूप बोद्धेय धर्मों को छोड़कर कैवल्य लाभ प्राप्त करे। इसकी साधना के लिए 'योग-दर्शन' में श्री पतञ्जलिदेव ने अभ्यास, वैराग्यादि का वर्णन करते हुए उपाय प्रत्यय पर बल दिया है। उपाय प्रत्यय का बल लेने वाले योगाभ्यासी साधक श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि आदि के क्रमानुसार अपने आपको साधना में लीन रखते हैं और अपनी कठिन साधना व परिश्रम के फलानुसार वह अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु यह कार्य विपुल वीर्यवान्, उत्साही साधकों का ही है। जो लोग दृढ़ता से लगे रहते हैं वे अवश्य ही सफल मनोरथ हो जाया करते हैं, किन्तु प्रायः हर एक जिज्ञासु साधक की भावना रहती है कि उसे सरल से सरल अभ्यास बताया जाय, जिससे वह अपने उच्चतम ध्येय को सुगमता से प्राप्त कर ले। इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर श्री पतञ्जलिजी के उपदेश—'श्रद्धा, वीर्य, स्मृति समाधि प्रज्ञा पूरक इतरेषां।' इत्यादि साधना के प्रकारों को भली प्रकार समझ करके सरलतम् साधना के उत्कट जिज्ञासु ने यकायक प्रश्न कर दिया—

किमेतस्मादेवासन्नतमः समाधिभवत्यस्य सोमे भवत्यन्योऽपि कश्चिदुपायो न वेति।

अर्थात् क्या समाधि प्राप्ति के लिए उपरोक्त वर्णित उपायों के अतिरिक्त कोई और सरलतम् उपाय है, जिससे बिना क्लेश के ही समाधि को प्राप्ति हो सके। इसके उत्तर में श्री पतञ्जलिदेव जी ने कहा—"ईश्वर प्रणिधानाद्वा" अर्थात् ईश्वर को आत्म निवेदन करने से भी समाधि सुलभ हो सकती है। व्यास भाष्य में श्री व्यासदेव जी ने भी कहा है कि :

प्रणिधानाद्भक्ति विशेषाद् आवर्जित ईश्वरस्तमनुग्रहात्य निध्यान मात्रेण तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतमः समाधि लाभः समाधि फलं च भवतीति।

अर्थात् ईश्वर को आत्म निवेदन कर देने से ईश्वर साधक के अभिमुख हो जाता है और

वह साधक के शुभ संकल्प को जान करके 'इदमस्मांऽभिमतं अस्ति' अर्थात् 'यह जो प्यारी चीज चाह रहा है वह हो आप।' ईश्वर के इस प्रकार के संकल्प द्वारा साधक को तत्काल समाधि सुलभ हो जाया करती है।

भगवान् पतञ्जलिदेव का इस प्रकार का सरल सा आदर्श पा करके साधक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने पुनः पूछने की इच्छा प्रकट की—

प्रधान पुरुष व्यतिरिक्तः कोयं ईश्वरो-नामेति।

अर्थात् प्रकृति पुरुष से भिन्न ईश्वर नाम की यह तीसरी वस्तु क्या है और उसकी परिभाषा क्या है? क्योंकि अभी तक वह यह समझता था कि प्रकृति और पुरुष दो ही हैं, जिनको तीव्रतम साधना के द्वारा प्रकृति-पुरुष विवेक को ही उसने अपना मुख्य लक्ष्य बनाया था, अब समाधि प्राप्ति के भिन्न उपायों के साथ ईश्वर प्रणिधान का भी सरल रूप उसके सामने आया। 'कोयं ईश्वरो नामेति' इस प्रश्नके उत्तर में भगवान् पतञ्जलिदेव ने बतलाया :—

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

अर्थात् क्लेश-कर्म विपाक दिकों से अपरामृष्ट पुरुष विशेष का नाम ईश्वर है। 'पुरुष' शब्द से बहु संख्यक पुरुषों का संकेत सूत्र से मिलता है। इसीलिए 'पुरुष विशेषः ईश्वरः' कह करके श्री पतञ्जलिदेव ने पुरुष विशेषत्वेन-ईश्वर का प्रतिपादन किया। योग-दर्शन में जिस प्रकृति पुरुष की विवेचना की गई है, उसका सम्बन्ध आत्मा से है और आत्मा क्लेश-कर्म विपाकादि से अपरामृष्ट नहीं है। बुद्धि-बोध आत्मा, पुरुष, जीवात्मा एवं क्लेश-कर्म विपाकादि से अपरामृष्ट नित्य सिद्ध शुद्ध बुद्ध सदैव मुक्त सामर्थातिशय विनिर्मुक्त ईश्वरसंज्ञक पुरुष विशेष ईश्वर का पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण करके भली प्रकार समझा दिया है। इसके आगे—

अविद्यास्मिता राग द्वेषाऽभिनिवेशा पंच क्लेशाः।

यह पांच क्लेश बतलाये गये हैं। अच्छे-बुरे फलों से सम्बन्ध रखने वाली क्रिया को कर्म कहते हैं। कर्म-फलों का नाम ही विपाक है और विपाक का अनुसरण करने वाली वासना फल-भोग पर्यन्त कर्माशय में पड़ी रहती है, उसी का नाम आशय है। अर्थात् इसी का नाम कर्माशय हुआ। यह क्लेश कर्म विपाकादि मन में वर्तमान रहते हैं। चेतन पुरुष इनसे बिलकुल भिन्न है। फिर भी क्योंकि वह बौद्ध ज्ञान को ग्रहण करता है, इस-लिये यह सब क्लेश-कर्म विपाकादि जीवात्मा में कहे जाते हैं। क्योंकि वह बुद्धि बोधात्मा होने के कारण इनके फलों को भोगता है। जैसे लड़ाई के मैदान में लड़ने वाले योद्धाओं की ही जीत और हार होती है, किन्तु वह जय और पराजय मानी जाती है उनके मालिक की। जिसके वेतन-भोगी होकर वे लोग स्वामी की जय के लिए तन, मन न्यौछावर करके लड़ रहे हैं। इसी प्रकार से

यद्यपि चित्त-शक्ति अपरिणामिनी है।' उसमें किसी प्रकार का परिणाम नहीं आता। किन्तु बुद्धि के द्वारा दर्शित विषय होने के कारण क्लेश कर्म विपाकादि आत्मा में मान लिये जाते हैं। किन्तु पुरुष विशेष ईश्वर इनके भोग से सदा-सर्वदा ही अपरामृष्ट है। अतः क्लेश कर्म विपाकादि से अपरामृष्ट पुरुष विशेष का नाम ही ईश्वर है।

व्यास भाष्य में ईश्वर का पुरुष विशेषत्व सिद्ध कर देने के बाद एक प्रश्न यह किया गया है कि—

कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहवः केवलिनः (ते हि तावत् सर्वे ईश्वराः किम्)।

अर्थात् बहुतसे केवली लोग इस प्रकार के हैं जो क्लेश-कर्म विपाकादिकों से बिल्कुल मुक्त हो चुके हैं, क्या वे सबके-सब ईश्वर हैं? अर्थात् क्लेश-कर्म विपाकादि से मुक्त होने के कारण क्यों न उन सबको ईश्वर मान लिया जाय?

श्री व्यासदेव जी ने अपने भाष्य में स्वयं ही प्रश्न की कल्पना कर ली और सर्व साधारण को समझाने के लिए इसका उत्तर भी दे दिया। बतलाया कि यह बिल्कुल ठीक है कि मुक्त आत्मा क्लेश-कर्म विपाकादि से मुक्ति पा जाने के बाद इन सबसे अपरामृष्ट है। किन्तु फिर भी इस प्रकार के जितने भी मुक्त पुरुष हैं, वे सबके सब तीन बन्धनों को काट करके केवली भाव को प्राप्त हुए हैं। किन्तु ईश्वर को उन तीन बन्धनों का सम्बन्ध न कभी था और न कभी आगे होगा। जिस प्रकार से मुक्त पुरुष मुक्ति से पहले बन्धन में रहे थे, इस प्रकार ईश्वर कभी बन्धन में नहीं था। और जो आत्मा प्रकृतिलीन है, उसका चित्त साधिकार है, इसलिए उसके बाद में जब भी वे जन्म ग्रहण करेंगे तब उनका बन्धन होगा ही, पर ईश्वर का नहीं हो सकता। ईश्वर न कभी बन्धन में था और न कभी आगे आयेगा। वह तो सदा ही मुक्त है एवं सदा ही ईश्वर है। यहां पर एक प्रश्न की और कल्पना की गई है कि ईश्वर का जो प्रकृष्ट सत्वोत्कर्षादि है अर्थात् जो सात्विक ज्ञान है उसका कारण क्या है? या उसका कारण कोई है ही नहीं। इसके उत्तर में बतलाया गया है कि उसका निमित्त कारण वेद है। फिर प्रश्न किया कि वेद का क्या निमित्त है? उत्तर में बतलाया कि उसका निमित्त कारण ईश्वर है।

एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्वे वर्तमानयोरनादिः सम्बन्धः।

अर्थात् शास्त्रोत्कर्ष और ईश्वर सत्व का परस्पर अनादि सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध अनवरत था और अनवरत ही रहेगा। यही योग दर्शन का पुरुष-विशेष ईश्वर है, जिसके आत्म-समर्पण से समाधि-सिद्धि होती है।

कुण्डलिनी-जागरण

★ आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा, एम० ए० एम-एड०

हृषीकेश का योग साधन आश्रम। सिद्ध-पीठ! जहाँ से न जाने कितने पुण्यात्मा अपने जन्म-जन्मान्तर के अविद्याजन्य क्लेश-कर्मों के भवपाशको काटकर हिमालयकी कन्दराओं में तथा भारत-माता की पावन गोदी में इतस्ततः विचरते हुए जीवन्मुक्त होकर संसार का कल्याण कर रहे हैं। यह वही स्थली है जहां सिद्धों के सिद्ध योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी ने योग की गुप्त पूँजी को मुक्त हस्त से दीन-दुखियोंको लुटाकर उन्हें अयाचक बना दिया। इस पुण्य आश्रम का कण-कण शालग्राम मन्दिर का दर्शन है। सायंकाल भगवान भास्कर भागीरथी के चरण को छोड़ योगेश्वर शंकर की निवास-भूमि हिमालय की चोटियों पर अपने रक्ताभ पंख फैला रहे थे। सदा की भांति गुरुदेव योगी मे घिरे गोपाल की तरह अपने शिष्यों के मध्य आसन पर सुखासीन थे, वातावरण में स्तब्धता थी। प्रत्येक साधक के हृदय में गुरुदेव के दृष्टिपात से आनन्द की हिलोरें उठ रही थीं। गम्भीर पैनी तर्कपूर्ण दृष्टि फेंकते हुए एक अपेक्षित व्यक्ति के आगन्तुक ने आकर महाराज जी को प्रणाम किया और समीप की दरी पर बैठ गया। उसके मन में बहुत से प्रश्नों की खिचड़ी पक रही थी। उसकी अन्तर्वृत्ति को जानकर गुरुदेव ने पूछा—लल्ला बोलो क्या चाहते हो? "महाराज जी आपके यहां योग से कुण्डलिनी जग जाती है?" आगन्तुक ने पूछा। "हां, लल्ला योग से जग जाती है। वैसे स्वाध्याय, तप, ब्रह्मचर्य आदि अन्य साधनों से भी ईश्वर और सिद्धों के अनुग्रह से कुण्डलिनी जग जाती है।" महाराज जी का संक्षिप्त उत्तर था। आगन्तुक ने संदेह-सूचक स्वर में कहा—"आपके यहां कोई ऐसे साधक हैं क्या, जिनकी कुण्डलिनी शक्ति जग गई हो?" प्रश्नकर्ता के प्रश्न को सुनकर गुरुदेव एक क्षण कुछ गम्भीर हुए फिर बोले—"यदि मैं कह दूँ कि 'हां' तो तुम कैसे जानोगे कि इस साधक की कुण्डलिनी जगी है या नहीं?" आगन्तुक हतप्रभ-सा था। गुरुदेव ने बात आगे बढ़ाई। हमारे यहां ऐसे एक नहीं अनेक हैं, जिनकी कुण्डलिनी जग चुकी है, किन्तु कुण्डलिनी जग जाने के बाद भी समर्थ गुरुदेव उस पर आवरण बनाये रखते हैं, जिस से वह अपने लोक व्यवहार को यथाविधि संचालित कर सके और अपने प्रारब्ध के कर्मों को भोगने के लिए साधना कर सके। अतः सामान्य व्यवहार को देखकर तुम नहीं पहचान सकोगे कि जिस साधक की कुण्डलिनी जागृत

हो गई है, उसके अन्दर कोई विशेषता है। हां यदि तुम्हें स्वयं अनुभव हो तो देखो। श्री गुरुदेव ने एक बहन (शान्तीदेवी) की ओर संकेत किया। उनको भस्त्रा प्राणायाम हो ही रहा था। नेत्र अर्द्ध निमीलित थे, अंगों से आनन्द को अभिव्यक्त करने वाली विविध भंगिमायें हो रही थीं। मानो आगन्तुक के प्रश्न का प्रायोगिक उत्तर देने के लिए ही श्री गुरुदेव की कृपा से वे ध्यानस्थ हो गई थीं। गुरु-बहन के पलक उलटकर उनकी उलटी हुई पुतलियों को दिखाते हुए श्रीगुरुदेव ने आगंतुक से कहा– "तुम आंखों में अंगुली डालकर स्वयं देखो, यदि पुतली सामान्य कर सको तो कर दो। आगन्तुक इस अभूतपूर्व दृश्य को देख कर कृतकृत्य भावको अभिव्यक्तिपूर्वक आभार प्रदर्शन करता हुआ चला गया और ध्यान की मुद्रायें चलती रहीं। आश्रम के साधकों के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। शिष्य इस प्रकार की अवस्थाओं का थोड़ा-बहुत अनुभव प्रायः प्रत्येक साधकको होता ही रहता है, किन्तु जो इस कृपा से वंचित हैं उनके लिए यह सब एक आश्चर्य है। श्री गुरुदेव प्रायः अपने शिष्यों से कहा करते हैं कि कुण्ड में से चाबी कोई नहीं है, किन्तु नियमित आदर सहित तथा दृढ़तापूर्वक बहुत काल तक किये गये अभ्यास के बिना शक्ति फिर सुप्तावस्था को प्राप्त हो जायगी।

इस घटना के उल्लेख से सामान्य पाठक के मन में कुछ प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं। कुण्डलिनी शक्ति क्या है? यह कैसे जगती है? हमें कैसे मालूम हो कि कुण्डलिनी जग गई है? ज्ञान के दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान स्वयं की अनुभूति या योगियों के अन्दर प्रकट हुए लक्षणोंके अवलोकन से उत्पन्न होता है और परोक्ष ज्ञान पूर्व सत्यनिष्ठ आचार्यों का वर्णित अनुभव है जिसे शास्त्र ज्ञान कहते हैं। शास्त्रों के अध्ययन से भी अर्थ अर्थात् प्रत्यक्ष गोचरताकर्षी फल की उपलब्धि होती है। अतः यहां संक्षेपमें शास्त्रोंके आधार पर उक्त प्रश्नोंका समाधान प्रस्तुत करता हूं। बिना शास्त्र-ज्ञान के प्रत्यक्ष गोचरफल के विषय में भ्रम और सन्देह हो सकता है इसलिए साधक को सन्त और शास्त्रका संग करते रहना चाहिए जिससे उसे साधना के मार्ग के परिवर्तनों के आने पर सन्देह नहीं रहता। उसे अपने अनुभवों को दूसरे के अनुभवों से मिलाने का अवसर मिलता है, जिससे उसके मन का विश्वास दृढ़ होता है।

कुण्डलिनी क्या है?—

पशु से सर्वशक्तिमान ब्रह्मनिष्ठ, नित्य बुद्ध-मुक्त बनाने वाली चिन्मय शक्ति कुण्डलिनी शक्ति है। जिस प्रकार प्रकृति की अव्यक्त और व्यक्त दो अवस्थायें हैं और व्यक्त प्रकृति में महाभूत प्रमुख हैं। प्रत्येक महाभूत अणु और परमाणुओं का ही समास है। वेदान्तकी पंचीकरण प्रक्रिया के आधार पर प्रत्येक महाभूत

में अपने से इतर अन्य भूतों का भी १/८ अंश विद्यमान रहता है, किन्तु प्रत्येक अणुमें शक्ति का केन्द्र उसकी नाभि (न्यूट्रोन) है, जिसके चारों ओर अन्य शक्तिकण परिभ्रमण करते हैं। नाभि का खण्डन होने पर परमाणुओं में क्षोभ उत्पन्न होता है और क्रियाशीलता से शक्ति उत्पन्न होती है। परमाणु विखण्डन से रेगिस्तान की हरी-भरी भूमि में बदला जा सकता है। इसी प्रकार की अनेक असम्भव कार्य भी सम्भव हो सकते हैं, इसी तरह मनुष्य के पिंड में आद्यशक्ति मूलाधार-चक्र के निकट सुप्तावस्था में है। यदि ईश्वर-कृपा, भजन-प्रताप, प्राणायाम, आसन, सिद्धकृपा या गुरु-मन्त्र के जप से कदाचित वह जग जाय तो जीव के कर्म-बन्धन तथा जन्म-मरण का चक्र कट जाता है और वह शिवत्व प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। अनादि-सिद्ध भगवान शंकर की यह शक्ति जग जाने पर शिव से युक्त हो जाती है तभी 'जीव पाइ निज सहज सरूपा' की अवस्था सम्भव होती है। विभिन्न उपनिषद्, ग्रन्थ तथा तन्त्र-ग्रन्थोंमें इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। शरीर में ७२ हजार नाड़ियां हैं, उनमें १४ नाड़ियां मुख्य हैं, उनमें भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियां प्रधान हैं। इनकी स्थिति शरीर की चीर-फाड़ करने पर नहीं देखी जा सकती। आधुनिक शरीर शास्त्रियों को जब चीर-फाड़ से ये नाड़ियां नहीं मिलतीं तो वे योग के सिद्धांत में सन्देह व्यक्त करते हैं। इन यन्त्रों और नेत्रों से स्थूल शरीर ही तो देखा जा सकता है। सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर को देखने के लिए वैज्ञानिकों के यन्त्र काम नहीं देंगे। उसके लिए ध्यानयोग-परायण होकर अन्तरावलोकन करना होगा। भीतर की आंखों से अन्दर का नजारा दिखाई देगा। हमारे सूक्ष्म शरीर और कारण शक्ति का निर्माण इन्हीं सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ी मण्डल से हुआ है, जिसे देखने का उपाय श्री तुलसीदास जी ने सरल शब्दों में बताया है—

श्री गुरु पद नख मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोहतम सो सप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के॥

मूलाधार-चक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सूर्य के प्रकाश के सदृश आभा वाली सुषुम्ना नाड़ी है। उसके मध्य में करोड़ों बिजली की चमक के समान दमकती हुई कमलनाल के रेशे की तरह सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति है। सर्प की तरह कुण्डली मारे हुए वह सुषुम्ना के द्वार को रोक कर अपनी पूंछ को मुख में दबाये सोई हुई है, योग-कुण्डलिनी उपनिषद् में संकेत है कि—

शक्तिः कुंडलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा,
मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दुवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्र समन्विता··· ॥

योग-कुण्डलिनी उ० ८२

यदि यह कुण्डलिनी मूलाधार की ओर रहती है तो जीव अष्ट प्रकार की प्रकृति के दायरे में बंधा रहता है। योगी उसे वहाँ से ऊपर ले जाकर ब्रह्मरन्ध्र में खोलकर मोक्ष प्राप्त करता है। योग चूड़ामणि उपनिषद् में यही बात कही गई है—

कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः,
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा सदा।

योग चूड़ामणि उप० ४४

योग शिखोपनिषद् में कहा गया है कि कुण्डलिनी का निवास कामरूप पीठ में होता है। यहीं से वायु, अग्नि, बिन्दु, नाद, हंस तथा मन जन्म लेता है। गुदा और मेढ़ के बीच में तिकोना मूलाधार चक्र है। यही जीव का स्थान है। यहीं कुण्डलिनी नाम की पराशक्ति है—

गुदमेढ्रान्तरालस्थं मूलाधारं त्रिकोणकम्,
शिवस्य जीवरूपस्य स्थानं तद्धि प्रचक्षते।
यत्र कुण्डलिनी नाम शक्तिः प्रतिष्ठिता।

शिखोपनिषद् १६१

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में प्राणियों की अन्दर चेतना की संरचना का विस्तार से वर्णन मिलता है। प्रत्येक प्राणी के अन्दर नाड़ी-मण्डल के द्वारा प्रवाहित होकर चेतना शक्ति क्रिया, इच्छा और अनुभूति का संचालन करती है। गर्भ जाम्बूनद के समान अग्नि प्रत्येक प्राणी के अन्दर निम्नलिखित आकार में होती है। दो पैर वाले प्राणियों में नाभि-मण्डल के बीच में त्रिकोण की आकार की तथा चार पैर वाले प्राणियों में इसका आकार गोकोर, रेंगने वाले प्राणियों में गोलाकार, रेंगकर चलने वाले प्राणियों में षट्कोण तथा पसीने से उत्पन्न प्राणियों में अष्टकोण होता है। नाभि-मण्डल में बारह नाड़ियों में जीव उसी प्रकार निरन्तर घूमता रहता है, जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले में घूमती रहती है। नाभि-चक्र से मुख हटकर तिरछा ऊपर की ओर कुण्डलिनी शक्ति का स्थान है। जहाँ वह आठ प्रकृतियों के रूप में आठ कुण्डली मारकर ब्रह्मरन्ध्र के मुख को चारों ओर से रोककर बैठी हुई है। वे आठ आकृतियाँ हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार। शक्तिपात से या तप, ध्यान, ईश्वर अनुग्रह या सिद्धानुकम्पा से वह कुण्डलिनी फूत्कार कर वायु और अग्नि को प्रचंड करती हुई हृदयाकाश में भुजंगी की तरह पलटकर उठ खड़ी होती है।[१]

योगी के अन्दर ऐसी सामर्थ्य आ जाती है कि कुण्डलिनी शक्ति के प्रबुद्ध होने पर वह अपने श्वास-प्रश्वास की गति से महीने का

१. तस्योर्ध्वे कुण्डली स्थानं नाभेरित्यर्धतोऽर्ध्वतः। अष्ट प्रकृतिरूपा सा चाष्टधा कुण्डलीकृता।
पवनाहारमुत्सृज्य जलाहारादि च नित्यशः। परितः कन्दपार्श्वे तु निश्चयेनैव सर्वदा स्थिता।
मुखेनैव समावेष्टय ब्रह्मरन्ध्रमुखं तथा। योगकालेन महता साग्निना बोधिता सती।
स्फुरिता हृदयाकाशे नागरूपा महोज्वला॥ त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् मंत्र भाग ६२-६५।

भोग कुछ क्षणों में भोग कर कर्म-बन्धन को काट सकता है। कुण्डलिनी प्रबुद्ध होने पर सुषुम्ना के शून्य विवर से ऊर्ध्वमुखी होकर मन के साथ ब्रह्मद्वार की ओर उसी प्रकार चलने लगती है जिस प्रकार धागे के सहित सुई आगे चलती है। उससे प्राणायाम स्वतः सिद्ध हो जाता है और जिस प्रकार चाबी से ताला खोलकर दरवाजे से अन्दर प्रवेश कर जाते हैं, वैसे ही योगी मोक्ष-द्वार को खोलकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है।१ अन्यान्य तन्त्र ग्रन्थों में भी विस्तार से कुण्डलिनी के महत्व और स्वरूप का वर्णन किया गया है। तथा रुद्रयामल तन्त्रमें कुण्डलिनी योग को महायोग की संज्ञा दी है तथा योगसिद्धि के लक्षण का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि योग की सफलता तभी है जब कुण्डलिनी शक्ति का जागरण हो जाय। गीतामें अर्जुन ने योगेश्वर जगदात्मा श्रीकृष्ण से जिस मन की चञ्चलता को देखते हुए यह कहा था कि हे श्रीकृष्ण! मन तो वायुसे भी अधिक चञ्चल है, यह सारी इन्द्रियों को छलका देता है, उस बलशाली और दृढ़ मन के नियन्त्रण मुझे कठिन लग रहे हैं।२ वह मन कुण्डलिनी-शक्तिके अधीन होकर चञ्चलता अपने आप छोड़ देता है। परमहंस रामकृष्णदेव जी मन की उपमा सरसों की पोटली और पारे से दिया करते थे। जैसे सरसों की पोटली खोल देने पर एक-एक दाना बिखर जाता है फिर उसे एकत्रित करना टेढ़ी खीर है। पारे को पकड़पाना बड़ा मुश्किल है, किन्तु जब पारा मूर्छित हो जाता है तो मृत व्यक्ति में भी जीवन-सञ्चार करने वाला रसायन बन जाता है। उसी प्रकार सरसों एकत्रित होकर तेल निकालने के काम आ सकती है। हमारा मन जब तक बाहर फैला हुआ है वह बलहीन है, उसमें संसार के राग-द्वेष, विषय-वासनायें भरी हुई है, किन्तु जब योगाभ्यास से संयम सिद्ध हो जाता है। धारणा-ध्यान और समाधि जहां एक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाते हैं वहां मन में अपार सिद्धियां उदित हो जाती हैं और उससे योगी तीनों लोकों को वश में कर सकता है।३

हठयोग प्रदीपिका में बताया गया है जैसे नदी, वन, पर्वत सहित समुद्र सहित पृथ्वी का आधार शेषनाग है, वैसे ही योग और तन्त्रों का आधार कुण्डलिनी-शक्ति है।४ यह स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन कुण्डली से वेष्टित कर मूलाधार चक्र में सोई हुई है। जीव इसके सोते रहने पर पशु बना रहता है। प्रबुद्ध होने पर शिवत्व प्राप्त करता है। उसकी आभा करोड़ों विद्युत पुंजों के सदृश है।

---

१. येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्। मुखेनाच्छाद्य सहसा प्रसुप्ता परमेश्वरी। प्रबुद्धा वह्नि योगेन मनसा सहिता सह। ध्यान-बिन्दु उपनिषद् ६५-६६

२. चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्। गीता २

३. वेदानांनं महायोगं योगानांना च कुण्डली। कुण्डल्यधीनं चित्तं तु चित्ताधीनं चराचरम्॥ मनसः सिद्धिमात्रेण शक्तिसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्। यदि शक्तिश्चली भूता त्रैलोक्यं स्याच्चलं वशे॥

—रुद्रयामल तन्त्र २, पटल २

४. सर्वेषां तन्त्रजातानां तथाधारोऽहिनायकः। सर्वेषां योगतंत्राणां तथाधारोहि कुण्डली॥

—हठयोग प्रदीपिका

कुण्डलिनी-शक्ति के नाम एवं रूप—

गोरक्ष-संहिता में कुण्डलिनी के निम्न-लिखित पर्यायवाची शब्दों का परिगणन मिलता है :—

कुटिलांगी१, कुण्डलिनी२,
भुजंगी३, शक्ति:४ ईश्वरी५।
कुण्डली६, अरुन्धती७,
चैतेशब्दा: पर्याय वाचका:॥

इसके अतिरिक्त तन्त्र ग्रन्थों में इसे मूलाधार निवासिनि, महालक्ष्मी, कामरूपा, परा, सूक्ष्मा वाग्देवी, महादेवी, महामाया, सरस्वती, आधारशक्ति, अम्बिका, पराशक्ति, वारुण्डा, तपस्विनी आदि कहा गया है।

गोरक्ष वचन संग्रह में कुण्डलिनी के विभिन्न नामोंके विषयमें संकेत मिलता है। कुण्डलिनी के विभिन्न नामों का आधार इस शक्ति के आकार तथा गुण है। योग-विद्याके गूढ़ रहस्यों का अधिकारी प्रत्येक साधक नहीं हो सकता है, अतः आचार्यों ने उसका कथन करने के लिए कुछ गुप्त संकेत बना रखे हैं, जिनका ज्ञान गुरु परम्परा से अधिकारी साधकों को होता है। कुण्डली नाम का निर्वचन करते हुए कहा गया है कि टेढ़ी-मेढ़ी (सर्प के आकार के समान) होने के कारण मूलाधार-शक्ति का नाम कुण्डली है।

येन मार्गेण गन्तव्यं ब्रह्मस्थानं निरामयम्।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी॥
कन्दोर्ध्वं कुण्डलीशक्ति: सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्,
बंधनाय च मूढानां यस्तां वेत्ति स योगवित्।
कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत्परिकीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशय॥
गंगा यमुनयोर्मध्ये बालरण्डां तपस्विनीम्।
बलात्कारेण गृह्णीयात् तच्छक्ति: परमं पदम्॥

अर्थात् ब्रह्मानन्द एवं मोक्ष के मार्ग को अपने मुँह से ढककर सर्प की तरह बलपूर्वक बैठी हुई शक्ति को जिसने जागृत कर लिया, उसकी मुक्ति में जरा भी सन्देह नहीं है। उस आद्या प्रसुप्त बालरण्डा तथा तपस्विनी शक्ति को साहस और धैर्य के साथ बलपूर्वक जागृत करना चाहिए, क्योंकि उसके जागने पर उसके अन्दर रहने वाले शिव से समरसता होगी, तभी जीवन धन्य बनेगा। एकरूपक के माध्यम से उस गहन विषय को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है। गंगा और यमुना के बीच में बसिविमुक्त वह शक्ति तपस्या कर रही है। गंगा यमुना क्या है?

इड़ा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
इड़ा पिंगलोर्मध्ये बालरण्डा च कुण्डली॥

इड़ा नाड़ी गङ्गा है और पिंगला यमुना नदी है उसके बीच में सुषुम्ना में बलपूर्वक सर्पिणी की सदृश कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है। शिव संहिता में वर्णन मिलता है कि यह सर्प की सदृश कुण्डली मारे हुए शक्ति अपने महातेज से स्वयं प्रकाशित होती है—

सुप्ता तालोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया,
अहिवत् संधिसंस्थाना वाग्देवी बीज संज्ञका।
ज्ञेया शक्तिरयं विष्णोर्निर्मया स्वर्णभास्वरा,
सत्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रय प्रसूतिका।
मूलाधारस्थ वह्न्यार्कतेजो मध्ये व्यवस्थिता,
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकारस्य तैजसी।
महाकुण्डलिनी प्रोक्ता परब्रह्म स्वरूपिणी,
शब्द ब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः।
शक्तिः कुण्डलिनीनाम विसतन्तु निभा शुभा॥
(शिव संहिता)

अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति सत्व-रज-तम को उत्पन्न करने वाली वैष्णवी शक्ति मूलाधार में स्थित स्वर्ण प्रभा से ज्योतिर्मय है। यह प्राण-शक्ति शब्द ब्रह्ममयी देवी के रूप की एक से एक अनेक वर्ण की आकृतियां हैं गोरक्षनाथ ने इस शक्ति के दो विभाग किये हैं—१. लोक-ज्ञान कराने वाली स्थूल शक्ति, २. सर्व व्याप्त सूक्ष्मा शक्ति। योग-शिखोपनिषद् में कुण्डलिनी से उत्पन्न होने वाली परम्परा का रूप इस प्रकार किया गया है—

यस्मादुत्पद्यते वायुर्यस्मान्नादः प्रवर्तते।
यस्माद्दुत्पद्यते बिन्दुर्यस्मान्नादः प्रवर्तते॥
यस्मादुत्पद्यते हंसो यस्मादुत्पद्यते मनः॥
तदेतत्कामरूपाख्यं पीठं कामफल प्रदम्॥
(शिखोपनिषद्)

अर्थात् गुदा और मेढ़ के बीच में त्रिकोण मूलाधार चक्र है। उसे ही जीवरूप शिव का स्थान कहा जाता है और यहीं कुण्डलिनीशक्ति प्रतिष्ठित है, इसी से प्राणवायु जन्म लेती है तथा अग्नि और बिन्दु उत्पन्न होते हैं। बिन्दु से नाद, हंस तथा मन उत्पन्न होते हैं। यह मूलाधार कामरूप पीठ सभी कामनाओं को सफल करने वाला है।

कुण्डलिनी प्रबुद्ध करने की प्रक्रिया—

जप, तप, भक्ति, ज्ञान, धर्म, कर्म आदि सभी का फल जब तक नहीं मिल पाता, तब तक कुण्डलिनी प्रबोध नहीं होता। एक ऐसे साधक मुझे मिले, जिन्होंने गायत्री के कई अनुष्ठान कर डाले, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। आवरण भङ्ग हुए बिना सारे साधन केवल शारीरिक एवं मानसिक श्रम है। सच्चे सुख का उत्स अपने अन्दर उस समय स्वयं भासित होने लगता है, जब यह आद्या शक्ति सहस्रार चक्र की ओर गमनोन्मुख होती है। जैसे सोते हुए सर्प जागने पर उसे सम्भालना मुश्किल है। छेड़ने वाले को ही कभी-कभी काट लेता है। उसी प्रकार आसन, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य, जप आदि साधनों से कभी-कभी कुण्डलिनी प्रबुद्ध हो जाती है। उसमें हित के स्थान पर शरीर में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। जब तक कोई कन्ट्रोलर नहीं होता, यह दामिनी के सदृश बलशाली शक्ति कुछ का कुछ कर देगी। गौतमी-तन्त्र में कहा गया है कि—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावत् सा निद्रिता प्रभो,
तावत् किञ्चित्र सिद्ध्येत मंत्र यन्त्रार्चनादिकम्।
जागर्ति यदि सा देवि बहुभिः पुण्य सञ्चयैः,
तदा प्रसादमायान्ति मन्त्र यंत्रार्चनादयः॥

अर्थात् मूलाधार में स्थित कुण्डली देवी जब तक जागृत नहीं होती तब तक मन्त्र-यन्त्र पूजा-पाठ सब निष्फल है। उसके जागृत हो जाने पर भव-व्याधि मिट जाती है और मन्त्र-यन्त्र पूजा-पाठ सब कुछ सफल हो जाता है। सद्गुरु की कृपा होने पर उसके संकल्प मात्र से कुण्डलिनी शक्ति जग जाती है। श्री गुरुदेव के चरणों में बैठकर मैंने ऐसे अनेकों पुण्यात्मा देखे जिन पर उनकी अहैतुकी कृपा हो गई और वे कृतकृत्य हो गये हैं। विस्तार के भय से उनके वर्णन के लोभ का सम्वरण कर रहा हूँ।

महायोगी गोरक्षनाथ की भी यह मान्यता है कि गुरु-कृपा से कुण्डलिनी जागृत हो जाती है—

पुच्छे प्रगृह्य भुजङ्गी सुप्तामुद्बोधयेच्च ताम्।
निद्रां विहाय सा शक्तिः ऊर्ध्वमुत्तिष्ठते हठात्॥
सुप्ता गुरु प्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणि पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च॥
प्राणस्य शून्य पदवी तदा राजपथायते।
तदा चित्तं निरालंबं तदा कालस्य वञ्चनम्॥

अर्थात् सोती हुई सर्पिणी को पूँछ से पकड़ कर जगाना चाहिए। हठयोग से वह शक्ति निद्रा छोड़कर ऊर्ध्वगमन करने लगती है। गुरु-कृपा से सोती हुई कुण्डली जब जग जाती है तब जीव की जड़-चेतन ग्रन्थियां तथा सभी चक्रों के कमल खिल उठते हैं। प्राणशक्ति शून्य नाड़ी में प्रवेश कर मोक्ष मार्ग की ओर उन्मुख हो उठती है। जब प्राणके साथ चित्त वृत्ति जोड़कर आलम्बन रहित हो जाता है, उस समय योगी काल का ग्रास नहीं बनता।

कुण्डलिनी जागृत होने पर योगी को गायत्री (अजपा जाप) का जप बिना मन्त्र संध्या, पूजा, यज्ञ तथा उपचारों के करने लगता है। ध्यानयोग-परायण योगी को शिव का ज्योतिर्मयमय सूक्ष्म शरीर प्रत्यक्ष गोचर होता है। उसे काष्ठ, पत्थर और मिट्टी की निर्मित प्रतिमाओं का आश्रय नहीं लेना पड़ता। कुलार्णव तन्त्र में कुण्डलिनी शक्ति जागने के समय शरीर में होने वाली क्रियाओं का पूर्ण विस्तार से मिलता है। उन लक्षणों के श्रवण मात्र से साधक की कुण्डलिनी शक्ति क्रियाशीलता हो जाती है देख लेने पर उसका संक्रमण दर्शक के अन्दर हो सकता है। देखिये कुलार्णव-तन्त्र के अष्टम उल्लास में शिवजी पार्वती जी को सम्बोधित करते हैं—

शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि योगयोगेश लक्षणम्।
तस्य श्रवण मात्रेण योगः साधारणायते॥
सम्मोदः परमानन्दः पतनं गायनं तथा।
वेसु वीणादिवाद्यञ्च कविता रचनादिकम्॥

रोदनं भाषणश्चैव समुत्थानं विजृम्भणम्।
तमसं विक्रिया देवि योग इत्यभिधीयते॥
विकृति मनसो हित्वा पदोल्लासः प्रवर्तते।
तदा तु देवसद्भावं भजन्ते योगिपुङ्गवाः॥

वास्तविक योग कुण्डली जागरण से ही प्रारम्भ होता है। आसन, मुद्रा, बन्धादि उस योगकी तैयारी है। गुरु के शक्तिपात से शिष्य के अन्दर कुण्डलिनी शक्ति जाग कर नाना प्रकार की क्रियायें करने लगती है। शिष्य के मन, प्राण और शरीर में बाह्य और आभ्यन्तर कम्पनादि क्रियायें होने लगती हैं। उसके जन्म-जन्मान्तर के संस्कार प्रत्यक्ष होने लगते हैं तथा विभिन्न योनियों की स्मृति उभर कर सामने आती है, जिससे साधक पशु पक्षियों के सदृश शब्द करता है। कभी आह्लाद में मस्त हो जाता है, हँसता है, रोता है, आनन्द में लोट-पोट हो जाता है, आन्दोलास में गाने लगता है। बंशी, वीणा, मृदङ्ग आदि शब्द मुख से बजाता है तथा कविता की रचना करता है। कभी रोता है, अकेले ही भाषण करता है, विभिन्न भाषायें बोलता है, आसन से उठ जाता है, जंभाई लेता है तथा इधर-उधर चलने लगता है। देहाध्यास नष्ट होकर देवता-भाव हो जाता है, जिससे मन, प्राण तथा शरीर में विचित्र प्रकार के आसन, प्राणायाम, बन्ध और मुद्रायें साधक को स्वतः होती हैं और विचार, वितर्क, आनन्दानुगत, सविकल्पक समाधि प्राप्त होती है। उस समय साधक का ज्ञान नष्ट नहीं होता और न मूर्छा-विष्ट की भाँति संज्ञाहीन होता है।

गुरुदेव जी के सङ्कल्पमात्र से पूर्ववत् अवस्था में साधक आ जाता है। ध्यानावस्था में साधक को उन्मनी अवस्था, खेचरी तथा भ्रामरी मुद्रा स्वतः सिद्ध हो जाती है। ध्यान में जो परम सुख होता है, वह वाणी से कहा नहीं जा सकता। वह सुख स्वसंवेद्य है। एक क्षण भी उस सुख से वञ्चित होने का मन नहीं होता। साधक को कम्प, प्रस्वेद, अश्रुपात, कण्ठ-स्वर की विक्रिया से विकृत शब्दोच्चारण गर्जना, नाचना, हँसना, रोना, चिल्लाना इत्यादि क्रियायें आनन्द की अवस्था में काफी समय तक होती रहती है। पातञ्जल सिद्धान्त के अनुसार—

विषयवती वा प्रवृत्तिः उत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धिनी।

अर्थात् मनको एकाग्र करने वाली दिव्य-विषयों का साक्षात्कार करने वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। उत्तम मध्यम और मन्द साधकों को ये क्रियायें भिन्न-भिन्न ढंग से होती हैं। मन्द साधकों में कम्पनादि शारीरिक क्रियायें इच्छामात्र से रोकी जा सकती हैं। मध्यम में कष्ट से और उत्तम में ये क्रियायें रोकने की इच्छा नहीं होती।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के १४वें

अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान अपने प्रिय सखा उद्धव से कहते हैं कि अब तक सारा शरीर पुलकित नहीं हो जाता, चित्त पिघलकर गद्-गद् नहीं होता, आनन्द के आंसू आंखों से छलकने नहीं लगते, तब तक मेरे भक्त के मल आवरण और विक्षेप नष्ट नहीं होते तथा वह मेरी भक्ति का पात्र नहीं होता। जिसकी वाणी प्रेम से गद्गद् हो रही है, चित्त द्रवित होकर आंखों से बहने लगता है। कभी-कभी खिल-खिलाकर हँसने लगता है, कभी लज्जा छोड़ कर गाने लगता है, कभी नाचता है। मेरा ऐसा भक्त न केवल स्वयं को अपितु सारे संसार को पवित्र कर देता है। जैसे आग में तपाने पर सोना मैल रहित होकर निखर उठता है, वैसे ही मेरी भक्ति से आत्मा कर्म वासनाओं से मुक्त होकर आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाता है।१ वामनीय संहिता में कहा गया है कि जिसकी कुण्डलिनी जागृत हो गई है, वह साधारण मनुष्य नहीं रहता। जिस प्रकार लोहेमें अग्नि प्रविष्ट होने पर लोहा भी अग्नि बन जाता है, उसी प्रकार शक्तियुक्त साधक दिव्य भावयुक्त वन्दनीय प्राणी हो जाते हैं। जो ऐसे साधकों की उपेक्षा करते हैं वे अपनी आयु, कुल, शील और यश को नष्ट करके अधोगामी बन जाते हैं।२

'सिद्धयोग' का प्रारम्भ कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से होता है। 'सिद्धयोग' का योगी परा और अपरा विद्या का ज्ञाता बन जाता है। मुक्तात्मा होकर संसार में मस्त हाथी की तरह निर्भय विचरण करता है। काल उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, फिर संसारी प्राणियों की तो बिसात ही क्या है? शक्ति का उत्थान होने पर सारे मन्त्र, तीर्थ, देवी-देवता तथा सिद्ध साधक पर स्वयं अनुग्रह करते हैं। जिस प्रकार कल गद्दार और प्रतिक्रियावादी कहे जाने वाले सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का स्वागत पुलिस के डण्डे से होता था। मन्त्री बनते ही सारा बुद्धिजीवी वर्ग, धन और पद-प्रतिष्ठा-सम्पन्न वर्ग उनका स्तवन करते नहीं थकता। इसी प्रकार कुण्डलिनी-शक्ति जब जोड़ा करने

---

१. कथं वा रोमहर्षः, कथं वा द्रवता चेतसा विना। विनाऽऽनन्दाश्रु कलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः।
वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं, रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥ २४ श्रीमद्भागवत ११/१४
यथाग्निना हेम मलं जहाति, ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानयं विधूय, मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥ २५

२. यथा योऽग्नि समावेशात्लोहो भवति केवलं। तथैव मम सान्निध्यात्भवते केवल मानुषः॥
वामनीय संहिता ३८
अवज्ञानं कृतं तेषु नरकीसूद चेतनैः। आयुः श्रियं कुलं शीलं हत्वा निरयमश्नुते॥ ४०

लगती है तो साधक में १८ प्रकार की सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं। उसे वेद-मन्त्रों का गूढ़ार्थ भासित हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति ६ रूप से प्रकाशित होती है। वर्ण, पद और मन्त्र इन तीन शब्द-रूपों तथा भुवन, तत्त्व तथा कला इन तीन अर्थ रूपों में। जिसके फलस्वरूप योगी भुवन अर्थात् दिव्य लोकों तथा पृथिव्यादि ३६ तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा स्वयं कुण्डलिनी की कलाओं को जान लेता है। इस प्रकार वर्ण, पद तथा मन्त्र का ज्ञान प्राप्त करता है। कुण्डलिनी प्रबोध से चक्रों का बन्धन तथा नाड़ी शोधन होता है। सुषुम्ना मार्ग में कुण्डलिनी के प्रवेश से योगी को समाधि लाभ होता है। इस दैवीय शक्ति के स्फुरण से साधक अपने-अपने संस्कारों के अनुसार हठयोग, मन्त्रयोग, लय-योग, नादयोग, कर्मयोग, भक्तियोग तथा राजयोगादि विभिन्न योगों में से किसी योग में प्रवेश कर उसकी साधनाओं में स्वतः प्रवृत्त हो जाता है।

शास्त्र ज्ञान और अनुभव के बिना साधक को स्वयं भ्रम हो जाता है कि जो अवस्थायें आती हैं, वे कहीं मस्तिष्क की खराबी के कारण तो नहीं है। चमत्कारों के अभाव में साधक के परिजन साधक को मेण्टल केस समझने की भूल कर बैठते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस के साथ यही हुआ। उनकी कुण्डलिनी शक्ति जागकर नाना, रोना, अंग-विकृति तथा उन्माद की नाना प्रकार की क्रियायें करती थीं। परिवार के लोगों ने समझा कि लड़के पर कोई भूत है। फिर क्या था, ओझा से झाड़ फूंक कराई जाने लगी। मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। हारकर मानसिक रोग-विशेषज्ञों की सलाह पर उनके पागलपन का इलाज किया गया। अज्ञानी परिवार-जन ऐसे उच्च साधकों की इस प्रकार की अवहेलना कर पाप के भागी बनते हैं। इसलिए कुण्डलिनी-शक्ति की सारी कलाओं का शास्त्रीय ज्ञान भी आवश्यक है। इससे साधकों के सन्देह और भ्रम की निवृत्ति होगी और अपनी साधना में अधिक श्रद्धा उत्पन्न होगी।

कुण्डलिनी-जागरण के समय कुछ विकृतियाँ

शक्ति के उत्थान के समय नाड़ी-शोधन न होने के कारण शरीर शक्ति के वेग को संभाल नहीं पाता। सुरुदेव जी की कृपा से सोई हुई सर्पिणी जब जग जाती है तो फुंकारती हुई सीधी उठ खड़ी होती है। फलस्वरूप शरीर की वायु कुपित हो जाती है। सर्पिणी वायुपान करने लगती है और नाड़ी-शोधन करने वाले प्राणायाम, वातक्रम, व्युत्क्रम, शीतक्रम, भस्त्रा, अग्निसार, वायुसार, कपालभाति, मुद्रा तथा मूलेन्द्रिय का अत्यधिक संकुचन आदि नौलि नेती, धौती, वस्ती का कार्य प्राणवायु कुण्डलिनी की प्रेरणा से स्वतः करने लगती है के प्राणायामों से 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्' के नियमानुसार प्रकाश का आवरण मल तथा वासनायें क्षीण हो जाती हैं और मन में सत्व-

गुण का विकास होने लगता है। मन में संयम की सौम्यता आती है जिससे ध्यान की स्थिति बनती है। वायु कुपित होने से अनेक प्रकार के देह विकोप, अंगमर्दन, अंगड़ाई, घर्षण, नेत्रकी विक्रिया, आँखों की पुतली का घूमना, हाथ-पैरों का कंपना, लोटपोट हो जाना, नृत्य करना, बादर की तरह उछलकर इधर-उधर गिरना, शराबी तथा भूताविष्ट की तरह मानसिक चेष्टायें करना, कम्प, रोमांच, स्वेद, अंतर में हिलोरें उठना, स्पन्दन, स्तम्भ, शरीर में जड़ता तथा भारीपन आना, लम्बी तथा शीघ्र श्वांस प्रश्वांस, आनन्दाश्रुपात, शारीरिक कृशता, मनक्षुब्ध की अल्पता, अल्प-निद्रा या दीर्घकालीन सुषुप्ति क्षुधा-वृद्धि अथवा अल्पता, ताप बढ़ना, शरीरके अन्दर छिपे रोगों में वृद्धि, शरीरमें दर्द, उदरशूल, कामोत्तेजना, डरना लगना, ज्वरानुभूति आदि अनेकों रोग प्रकट होकर शीघ्र भोग द्वारा समाप्त हो जाते हैं। उस अवस्था में शुचिता और अशुचिताका विधि निषेध तिरोहित रहता है। उल्टे-सीधे जैसे भी जप-तप किया जाय सब फलदायी होता है। उस अवस्था में साधक का कभी पतित नहीं होता।

शक्ति स्फुरण से अन्तराओं की निवृत्ति होने पर कुण्डलिनी की कृपा से साधक अपनी मञ्जिल की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। साधक को ब्रह्मसत्ता का साक्षात्कार होता है जिसके फलस्वरूप ध्वनि, नाद, सिद्धोधिका, अर्धेन्द्र, बिन्दु, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी तथा वर्णमाला की समस्त सृष्टि का बोध होता जाता है। उस अवस्था में काव्य-रचना, मंत्र-सिद्धि, वाक्सिद्धि, संकल्पसिद्धि आदि सहज क्रियायें होती हुई देखी जाती हैं। मन के समक्ष विषयोंके सुखसे लाख गुने अधिक लुभावने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध उपस्थित होकर मन को अन्तर्मुखी बना देते हैं। फिर उत्तरोत्तर दिव्य गन्ध, दिव्य स्पर्श, दिव्यशब्द, दिव्य देवी-देवताओं के रूप-दर्शन तथा दिव्य रस की अनुभूति का अनुभव होकर 'विशोका वा ज्योतिष्मती' इस महर्षि पतञ्जलि प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार चिन्ता और शोक को दूर कर देने वाली ज्योतिष्मती प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। श्रुति कहती है—'तरति शोकमात्मवित्।' अर्थात् आत्मवेत्ता शोक से परे हो जाता है। दिव्य ज्योति के दर्शन का यह पाठ साधक के जीवन में देखने को मिलता है। कबीर ने इस दशा के लिए लिखा है—

मन मस्त सुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गाठ गठियायो,
बार-बार वाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू,
पूरी भई तब क्यों तोले॥
सुरत कलारी भई मनवा से,
मदरा पी गई बिनु तोले।
हंसा पायो मान सरोवर,
ताल तलैया क्यों डोले॥
तेरा साहब है घट माहीं,
बाहर नैना क्यों खोले।
कहत कबीर सुनो भई साधो,
साहिब मिल गये बिन डोले॥

खेचरी, भूचरी, शाम्भवी आदि मुद्रायें बिना आयास के स्वतः होती है। सिद्धयोग वास्तव में राजयोग है, जिसे कई जन्मों में प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह परमसुख सद्गुरु की कृपा से पलभर में साधक प्राप्त कर धन्य हो जाता है। इस अवस्था के आने पर कर्म-बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। जन्म-जन्मान्तर की संगिनी अविद्या अपने को विधवा समझने लगती है। 'मोह न नारि-नारि के रूपा। पन्नगारि यह नीति अनूपा।।' अविद्या हरिभक्त को देखकर भाग खड़ी होती है और अपने हाथ से साधक को जाते देखकर सिद्धियों से यह प्रार्थना करती है कि बहिनो! तुम्हीं मोम के बशीभूत कर साधक को हमारा बना रहने दो। यदि साधक समझा हुआ तो अपनी साधना को दृढ़तर करता चला जाता है और अपनी मंजिल तक पहुँचे बिना दम नहीं लेता। कुण्डलिनी-शक्ति का दृश्य जिस साधक के जीवन में होने लगता है वह स्वामी रामतीर्थ की तरह शहंशाह समझता है। ऐसे साधक का विषय-विकार कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। सहजोबाई ने एक पद में इसी अवस्था का इन शब्दों में निरूपण किया है :—

भया हरि रस पी मतवारा।
आठ पहर झूमत ही बीते,
डार दिया सब भारा॥
इड़ा, पिंगला डार पहूँचे,
सुखमन पाट उघारा।
पीवन लगे सुधारस अबही,
दुर्जन पड़ा विडारा॥
मंत्र-अमूल जिन आसन मारयो,
चमक-चमक चमकारा।
भँवर गुफा में इड़ा बैठे,
देखो अधिक उजारा॥
चित्त स्थिर चञ्चल मन थाका,
पाँचों का बल हारा।
चरनदास किरपा सूँ सहजो,
भरम करम हुए छारा॥

कुण्डली प्रबोध के कुछ उपाय—

हठयोगी गोरक्षनाथ के अनुसार केवल कुम्भक प्राणायाम के अभ्यास से कालान्तर में कुण्डलिनी जग जाती है। कुम्भक प्राणायाम में प्राणवायु भरकर या रेचक कर सहज प्राणकोष रखने का अभ्यास करना पड़ता है। कुम्भक प्राणायाम दो प्रकार का होता है— १. प्राणवायु सहित, २. वायु रहित। द्वितीय प्रकार के प्राणायाम से कुण्डली सिद्ध होती है।

कुम्भके केवले सिद्धे रेचक-पूरक वर्जिते,
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
कुम्भकात् कुण्डलीबोधः कुण्डली बोधतो भवेत्,
अनर्गला सुषुम्ना च हठसिद्धिश्च जायते।
(योग-वचन संग्रह १२७-२९)

हठयोग और राजयोग परस्पर पूरक हैं। अतः साधक को दोनों का ही अभ्यास अपेक्षित है तभी पूर्णता मिलती है। अन्तर्जगत के दर्शन होने पर साधक जागते में सोता है और

(कृपया शेष पृष्ठ ४९ पर पढ़िये)

इस ओर से उस ओर

★ श्री राघवेन्द्र तिवारी

एक लम्बी नींद टूट चुकने पर
मोह से हतप्रभ होकर
लोभ की बाहों में आ गिरा
—'अबे हट कूढ़े !
अब तो तू रिटायर हो गया'
लोभ ने टरका दिया
और वह काँपता हुआ
महले भाई क्रोध की
दहलीज पर देने लगा दस्तक
जिसके आगे कभी झुका किया होगा
उसका मस्तक
क्रोध, क्रोध था,
उसकी प्रत्येक भंगिमा में
प्रतिशोध था
सामने फैले हुए हाथ
एक झटके से काट दिये
भाई-बन्दों के सारे रिश्ते
एक क्षण में पाट दिये
उसने—
गीता से दूर रखी अपनी आँखें
रामायण से दूर रखी अपनी जीभ
और वेदों को ध्वनि मात्र से दूर रखा
अपना पञ्चभूत शरीर
होकर, वह अपने बड़े भाई
काम की ड्योढ़ी पर
अपने नत हो आये दर्प को
जैसे ही रखा कि, सारा शरीर
शिथिल होकर
बुहरा तो टूट गया
उसके सारे सम्बन्धी, भाई

मित्र परिजन
आज, वर्षों हो रहे थे गाँव छूट
हृदय सब, हर क्षिण
उसकी बुद्धि धर्म के घर की ओर
जो उसका घोर शत्रु था
से चली
और आखिर में मिल भी गई
वह गली
जिससे धर्म रोज
घूमने निकलता था
अपने काम पर जाता था
अपनी नित्य क्रियायें
और सारी सम्पदायें
जिस पर स्थित किये था
उसी गली में
वह पहुँच गया था
—हाथ कटे थे
—इन्द्रियां शिथिल थीं
—वह भिखारी था
—उसका कोई सम्बन्धी नहीं था
केवल धर्म के गुजरने वाली गली ही
उसके पास थी, सामने थी
अगल-बगल थी, ऊपर-नीचे थी
वह सभी तरफ से टूट चुका था
उसका धीरज छूट चुका था
उसने थोड़ा घिसटकर
उस गली का नाम पढ़ना चाहा—
वह घिसटा और पढ़ ही लिया
लिखा था—
"योग-मार्ग"
और फिर वह धर्म का
सगा भाई बन गया
और आज भी है
—आदमी ।

अभयपद की प्राप्ति का साधन--योग

श्री डा० विष्णुदत्त शर्मा, बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी

जिसका किसी घर में अनेक थे, वहां एक रह गया। जिन्हें कुछ दिन पूर्व देखते थे, अब वह दृष्टिगोचर नहीं होते। अनेक सम्बन्धियों व साथियों का नाम शेष रह गया। स्वयं भी लकड़ी के सहारे धीरे-धीरे चलने लगे, झुर्रियों से मुख भर गया, सिर के केश श्वेत हो गये। शरीर शिथिलता को प्राप्त हो गया, दृष्टि क्षीण हो गई और नदी-तट पर बालू में उत्पन्न वृक्ष के समान दिनोंदिन मृत्यु के निकट पहुँचते जा रहे हैं और इस प्रकार दिन-रात रूपी पासों को फेंकने वाला काल-पुरुष काली के साथ प्राणी रूपी पासा लेकर संसार रूपी चौसर का खेल क्षण-क्षण खेल रहा है। परन्तु उस पर भी हम विचार नहीं करते कि इस क्षण-भंगुर जीवन में हमें क्या करना चाहिए। जो गृहस्थ लोग घर के काम-धन्धों में उलझे रहते हैं एवं परलोक की प्राप्ति के साधनों की अवज्ञा करते जाते हैं, उनके लिए हजारों बातें कहने-सुनने एवं सोचने-करने को रहा करती हैं। उनकी सारी उम्र यों ही बीत जाती है। उनकी रात या तो नींद से या स्त्री-प्रसंग से कटती है और दिन धन की हाय-हाय या कुटुम्बियों के भरण-पोषण में समाप्त हो जाता है। संसार में जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्धी कहा जाता है। ये शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं है, असत्य हैं, परन्तु जीव उनके मोह में ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात दिन उनको मृत्यु का ग्रास होते देखकर भी चेतता नहीं। उसकी बुद्धि यों ही झूठे सुख के फेर में फंसी रहती है और यह जीव यहां सुख की वासना से स्वप्न-सा देखता हुआ भटकने लगता है, किन्तु इस मायामय जगत में कहीं भी उसे सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे मनुष्यों को ही इङ्गित करते हुए योगिराज श्री भर्तृहरि जी ने अपने वैराग्य-शतक में लिखा है कि—

भोगाभंगुर वृत्तयो बहु
विधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येह कृते परिश्रमत,
रे लोकाः कृतं चेष्टितैः।
आशापाशशतोक्षाप्ति-
विशदं चेतः समाधीयतां,
कामोच्छेत्तृहरे स्वधामनि
यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः॥

अरे मनुष्यो ! इस संसार में अनेक प्रकार के क्षण-भंगुर सुखों को देने वाले जो भोग हैं, उन्हें जन्म-मरण के कारण जानकर भी तुम यहां किस कारण घूमते हो ? ऐसे क्षणिक भोगों के लिए प्रयत्न व्यर्थ है। अतः सैकड़ों प्रकार के आशा-पाशों को तोड़कर और स्वच्छ चित्त होकर कामोच्छेदक भगवान शिव में अपने चित्त को लगाओ।

अतः जो अभयपद को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें तो सर्वात्मा, सर्व शक्तिमान प्रभु जी का ही भजन करना चाहिए, क्योंकि उनके भजन से जन्म-मृत्यु के चक्कर में डालने वाला अज्ञान का नाश हो जाता है। पशुओं की बात तो अलग है, परन्तु मनुष्यों में भला ऐसा कौन है जो लोगों को इस संसाररूपी वैतरणी नदी में गिरकर अपने कर्म जन्य दुःखों को भोगते हुए देखकर श्री प्रभु जी का मंगलमय चिन्तन नहीं करेगा, इन असत् विषय-भोगों में ही अपने चित्त को भटकने देगा ? मनुष्य जन्म का यही इतना ही लाभ है, चाहे जैसे हो ज्ञान से, भक्ति से, योग से अथवा अपने धर्म की निष्ठा से जीवन को ऐसा बना लिया जाय कि मृत्यु के समय भगवान की स्मृति अवश्य बनी रहे। अपने कल्याण-साधन की ओर से असावधान रहने वाले पुरुष की वर्षों लम्बी आयु भी अनजान में ही व्यर्थ बीत जाती है, उससे क्या लाभ ? श्री भर्तृहरि जी ने भी कहा है कि—

प्राप्ताः श्रियः सकल काम दुघास्ततः किं,
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं,
कल्पस्थितास्तनुभृतां तनवस्ततः किम् ॥

जीर्णा कन्था ततः किं,
सितमपटं पट्ट सूत्रं ततः किं ।
मैका भार्यातितः किं बहुभिरिमैः,
कोटि संख्यास्ततः किं ॥

भक्तंशुष्कं ततः किं कदशन-
,मथवा पायसान्नेतः किं ।
व्यक्त ज्योतिर्नवान्तर्म-
थितमवमयं वैभवं ब्राततः किं ॥

अर्थात् सभी कामनाओं के देने वाली लक्ष्मी के प्राप्त होने से क्या होता है ? शत्रुओं को पद-दलित करने या प्रेमियों के धनादि से सम्मानित होने अथवा कल्प-पर्यन्त जीवित रहने से भी क्या लाभ है ? कन्था के जीर्ण होने से क्या ? श्वेत रेशमी वस्त्रों के धारण से, स्त्री के एक होने से, करोड़ों हाथी-घोड़ों वाले ऐश्वर्य से या मध्याह्न में श्रेष्ठ भोजन अथवा सायंकाल में निकृष्ट भोजन प्राप्त होने से भी क्या ? अर्थात् यदि भयभय नाशक ब्रह्मतेज धारण न किया तो उन सबके उत्कृष्ट होने से ही क्या लाभ ?

अतः सावधानी से ज्ञानपूर्वक बिताई हुई घड़ी, घड़ी भी श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके द्वारा

अपने कल्याण की तो चेष्टा की जा सकती है। राजर्षि खट्वाङ्ग ने अपनी आयु की समाप्ति का समय जानकर दो घड़ी में ही सब कुछ त्याग कर भगवान के अभयपद को प्राप्त हो गये। अतः इस अस्थिर, क्षण-भंगुर जीवन में विवेकी पुरुषको अपने परम कल्याण के लिए अवश्य प्रयत्न कर लेना चाहिए। श्री भर्तृहरि जी के शब्दों में—

आयुः कल्लोललोल कतिपय-
दिवस स्थायिनी यौवन श्रीरर्थाः।
संकल्पकल्पा धनसमय-
तडिद्विभ्रमा भोग पूराः॥
कण्ठाश्लेषोदगूढं तदपि च,
न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं।
ब्रह्मएयासक्त चित्ता भवत,
भवभयाम्भोविपारं मतरीतु॥
भोगामेघवितान मध्य-
विलसत्सौदामिनी चंचला,
आयुर्वायु विघट्टिताभ्रपट-
लीलानाम्बुवद् भंगुरम्।
लोला यौवन लालसास्तनु-
भृतामित्याकलय्य द्रुतं,
योगे धैर्य समाधिसिद्धि सुलभे
बुद्धिं विधत्तं बुधाः॥

अर्थात् संसार के भोग चञ्चला विद्युत के समान अस्थिर है। आयु भी जल की तरङ्गों के समान चञ्चल है। यौवन की शोभा भी कुछ दिनों तक सीमित है, धन संकल्प कल्पना के समान अस्थिर है, वासना वर्षा ऋतु के विद्युत विलास के समान चपल और स्त्रियों का कण्ठ-मिलनयुक्त आलिङ्गन रूपी सुख भी अस्थायी है। अतः बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि इस भवभय रूपी सागर से पार जाने के लिए ब्रह्म चिन्तन एवं धैर्य से प्राप्त एकाग्रता द्वारा सुलभ समाधि-सिद्धि का ही प्रयत्न करे।

अतः आयु ढलने पर निज कल्याणकामी पुरुष को चाहिए कि वह वैराग्य के शस्त्र से शरीर और उससे सम्बन्ध रखने वालों के प्रति ममता को काट डाले। प्रतिदिन पवित्र होकर किसी स्वच्छ एकान्त स्थान में विधिपूर्वक आसन लगाकर बैठे और तत्पश्चात् मन ही मन प्रणव का जप करे। प्राणवायु को वश में करके मन का दमन करे और एक क्षण के लिए भी प्रणव को न भूले। बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाले और कर्म की वासना से चञ्चल हुये मन को विचार के द्वारा रोककर इष्टदेव भगवान के मंगलमय रूप में लगाये। स्थिर चित्त से इष्टदेव के श्री विग्रह में से किसी एक अंग का ध्यान करे। निज शरीर के अन्दर ही विराजमान इष्टदेव भगवान के प्रादेशमात्र स्वरूप की धारणा करनी चाहिए और ऐसी धारणा बनानी चाहिए कि इष्टदेव चतुर्भुज

रूपमें विराजमान हैं। उनके मुख पर प्रसन्नता झलक रही है, कमल के समान विशाल और कोमल नेत्र हैं उनके, कदम्ब के पुष्प की केसर के समान पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। भुजाओं में श्रेष्ठ रत्नों से जड़ित सोने के बाजूबन्द शोभायमान हैं। सिर पर सुन्दर मुकुट एवं कानों में कुण्डल हैं, जिनमें जड़े हुए बहुमूल्य रत्न जगमगा रहे हैं। उनके चरण-कमल योगेश्वरों के खिले हुए हृदय-कमल की कर्णिका पर विराजित हैं। वक्ष-स्थल सुन्दर वनमाला से घिरा है, उनके बालों की लटें चिकनी, निर्मल और घुँघराली हैं। उनका मुख कमल मन्द मन्द मुस्कान से खिल रहा है, लीला पूर्ण-हास्य और चितवन से शोभायमान भौंहों के द्वारा वे निज-जनों पर अनन्त अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं। जब तक मन इस धारणा के द्वारा स्थिर न हो जाय, तब तक बार-बार इन चिन्तन स्वरूप प्रभु जी को देखते रहने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रभु जी के चरण-कमलों से लेकर उनके मुस्कानयुक्त मुख कमल पर्यन्त समस्त अंगों को एक-एक बुद्धि के द्वारा धारणा करनी चाहिए। जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होती जावेगी, वैसे वैसे चित्त स्थिर होता जावेगा। जब एक अंग का ध्यान ठीक ठीक होने लगे, तब उसे छोड़कर दूसरे अंग का ध्यान करना चाहिए। ये विश्वेश्वर प्रभु इन्द्रिय नहीं इष्टा हैं। सगुण-निर्गुण सब कुछ इन्हीं का स्वरूप है। यदि प्रभु का ध्यान करते समय मन रजोगुण से विक्षिप्त या तमोगुण से मूढ़ हो जाय तो घबराना नहीं चाहिए। धैर्य के साथ योग-साधना के द्वारा उसे वश में करना चाहिए, क्योंकि धारणा उक्त दोनों गुणों के दोषों को मिटा देती है। धारणा स्थिर हो जाने पर ध्यान में जब योगी अपने परम मंगलमय आश्रय इष्टदेव प्रभु जी को देखता है, तो इस ध्यान के अभ्यास से साधक का प्रभु में प्रेम हो जाता है। शरीर में आनन्दातिरेक के कारण रोमांच होने लगता है। उत्कण्ठाजनित प्रेमाश्रुओं की धारा में वह बारम्बार अपने शरीर को नहलाता है और फिर मछली पकड़ने के काँटे के समान श्री प्रभु जी को अपनी ओर आकर्षित करने के साधन-रूप में अपने चित्त को भी धीरे-धीरे ध्येय वस्तु से हटा लेता है। जैसे तेल के समाप्त हो जाने पर दीप-शिखा अपने कारण-रूप तेजस तत्व में लीन हो जाती है, वैसे ही विषय और रागसे रहित होकर मन ब्रह्माकार हो जाता है।' इस अवस्था के प्राप्त होने पर योगी एक अखण्ड परमात्मा को ही सर्वत्र अनुगत देखता है और इस प्रकार प्रभु की महती कृपा से तत्व ज्ञान प्राप्त करके आत्मानुभव के द्वारा सारे संशयों से मुक्त हो जाता है और फिर लिङ्ग-देह का नाश होने पर एकमात्र अपने स्वरूप-भूत कैवल्य संज्ञक मंगलमय पद को सहज में ही प्राप्त कर लेता है। यही प्रभु जी का अविनाशी परमपद है, जहाँ मृत्यु

की कुछ भी दाल नहीं गलती, वहाँ पहुँचकर योगी फिर लौटकर नहीं आता।

मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो,
मत्प्रसादेन भूयसा।
निःश्रेयसं स्वसंस्थानं,
कैवल्याख्यं मदाश्रयम्॥
प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः,
स्वदृशाच्छिन्न संशयः।
यदगत्वा न निवर्तंत,
योगी लिङ्गनिवर्हणम्॥

संसार-चक्र में पड़े हुए मनुष्यों के लिए यह योग-साधन जिसके द्वारा चित्त शीघ्र ही शुद्ध होकर परमात्मा प्राप्ति के मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है। अत्यन्त कल्याणकारी है और इसके अतिरिक्त कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है। श्री भर्तृहरि जी ने कहा है कि—

आशानाम नदी मनोरथ-
जला तृष्णातरङ्गाकुला।
रागग्राहवती वितर्क-
विहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी॥
मोहावर्तसुदुस्तराऽति-
गहना प्राप्तज्जविन्तातटी।
तस्याः पारगतां विशुद्ध
मनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥

आशा नाम की नदी में मनोरथरूपी जल और तृष्णारूपी तरंगें हैं, राग ही उसमें ग्राह है और वितर्क अर्थात् अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों के निर्णय की विचारधारा रूपी पक्षी वृक्ष पर बैठे हैं और वह धारा धैर्य रूपी वृक्ष को गिराती है। मोह रूपी गहन भँवर और चिन्ता तट है। शुद्ध मन वाले योगीश्वर ही ऐसी नदी से पार होने में समर्थ हैं।

अतएव कल्याणकामी पुरुष को योग-धारणा के द्वारा मन को स्थिर करना चाहिए और उन सत्यस्वरूप आनन्दनिधि श्री प्रभु जी का ही ध्यान करना चाहिए। मुमुक्षु-जनों को सम्बोधित करते हुए श्री भर्तृहरि जी ने लिखा है कि—

यावत्स्वस्थमिदं कलेवर-
गृहं यावच्च दूरे जरा।
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता
यावत्क्षयो नायुषः॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा,
कार्यः प्रयत्नो महान्।
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखनन,
प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

जब तक काया स्वस्थ है और वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों के करने में समर्थ हैं तथा जब तक आयु नष्ट नहीं होती, तब तक विद्वान् पुरुष को अपने कल्याण के लिए प्रयत्न कर लेना चाहिए। घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने से क्या लाभ?

शिव ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही शिव है

* ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश पालीवाल

ब्रह्म परमात्मा का लक्षण बताते हुए वेद का कथन है—

यतो वा इमानि भूतानि जीवन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयत्स्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म ।

अर्थात् ये भूत जिससे पैदा होते हैं, जन्म पाकर जिसके कारण जीवित रहते हैं और नाश होते हुए भी जिसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। वही जिज्ञासा के योग्य है और वही ब्रह्म है।

श्रुति भी यही कहती है कि—"सृष्टि के पूर्व काल में सत्-असत् दोनों ही नहीं, वे शिव 'सत्' चेतन वस्तु को कहते और 'असत्' कहते हैं जड़ वस्तु को। जब ये जड़ और चेतन दोनों नहीं रहते, तब केवल मात्र शिव ही शेष रहता है, उसकी सत्ता ही जगत्कारण है। समस्त वेद, शास्त्र ब्रह्म को जगत् का कारण बताते हैं, अतएव यह बात माननी पड़ेगी कि ब्रह्म ही का नाम शिव है। श्रुति के अनुसार—

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु-
र्य इमाल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति,
सञ्चुकोचान्तकाले ।
संसृज्य विश्वा,
भुवनानि गोपाः ॥

(श्वेताश्वर ३/२)

अर्थात् एक ही रुद्र है, जो कि इन सब लोकों को अपनी शक्ति से वश में रखा है। अतएव वह ईश्वर है, उसकी सब उपासना करते हैं, वह सब लोकों को उत्पन्न कर अन्त-काल में संहार भी करता है, वही सबके भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवाधिदेव महेश्वर तीनों गुणों से अतीत है, वे सर्वमय हैं, सबको आधाररूप शक्ति की भी उत्पत्ति के कारण है। वे ही तीनों गुणों को (ब्रह्मा, विष्णु रूप में) विग्रह-रूप में धारण करने वाले उनके आत्म रूप हैं, प्रकृति और पुरुष भी उन्हीं के शरीर हैं और वे उन दोनों के भी आत्मा हैं। लीला से खेल ही खेल में अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना कर देते हैं। जगन्नियन्ता ईश्वर रूप से भी वे ही स्थित हैं। जो सबसे परे नित्य निष्कल अखण्ड अथवा

कल्पना में आने योग्य परमेश्वर हैं। वे ही सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च के आधार, उसके आत्मा तथा अधिष्ठान भी हैं। सुतरां भगवान सदाशिव ही महेश्वर हैं, वे ही प्रकृति पुरुष भी हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी वे ही हैं। वस्तुतः सब कुछ भगवान सदाशिव ही हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों ही कारणात्मा हैं। वे क्रमशः चराचर जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार के हेतु हैं और साक्षात् महेश्वर (परात्पर परम भगवान) से प्रगट हैं। उनमें परम ऐश्वर्य विद्यमान है। वे महेश्वर की भांति और उनकी शक्ति से अधिष्ठित हो नित्य उनके कार्य करने में समर्थ होते हैं। भगवान सदाशिव ही इस जगत् के पिता व जगत-जननी उमा ही सम्पूर्ण जगत की माता हैं। भगवान सदाशिव शक्तिमान और उमा उनकी शक्ति है। शक्तिमान पुरुषरूप तो 'परमात्मा' है और स्त्रीरूपिणी उनकी 'पराशक्ति' है, शिवलिङ्ग ही वह अण्ड है जिसमें प्रकृति बीजरूप में समाविष्ट रहती है। इसीलिये इसे ब्रह्म-अण्ड अर्थात ब्रह्माण्ड कहते हैं।

जिस प्रकार सदाशिव भगवान अपने को तीन भागों में (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) रूप में प्रगट कर सृष्टि को संचालन करते हैं, उसी प्रकार शिवा में भी अपने को (उमा, लक्ष्मी, सीता) रूप में विभक्त कर भगवान शिव के रूपों की सेवा करती हैं। शिव पुराण में शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश और सूर्य—ये पाँच सगुण देवता एक ही सदाशिव भगवान के स्वरूप माने गये हैं। सूर्य भगवान को स्वयं भगवान शिव ने अपना रूप बताकर उन्हें अर्घ्यादि देकर पूजन की आज्ञा दी है। इस प्रकार भगवान शिव अनादि, अजन्मा परमात्म परब्रह्म हैं। सत् चित् आनन्द रूप परम परात्पर ब्रह्म (शिव) एक हैं, वे ही सर्वदा सर्वथा पूर्ण सर्वज्ञ, सर्वगत, अनन्त, विभु हैं, वह सर्वातीत हैं, सर्वरूप हैं, नित्य निराकार, नित्य निर्गुण हैं, वह नित्य साकार, नित्य सगुण हैं। अवश्य ही उनकी आकृति पाञ्चभौतिक नहीं है और न उनके गुण त्रिगुणजनित ही हैं, वह ब्रह्म स्वरूपतः नित्य एकमात्र होते हुए भी स्वरूपतः ही अनादि काल से विविध स्वरूप सम्पन्न, विविध शक्ति सम्पन्न एवं विविध शक्ति-प्रकाश-प्रक्रिया-सम्पन्न हैं। नित्य एक होते हुए भी उनकी नित्य विभिन्न पृथक सत्ता है। उन्हीं पृथक रूपों के नाम शिव, विष्णु, शक्ति, राम, कृष्ण, गणेश, ब्रह्मा आदि हैं। वह एक ही अनादि काल से इन विविध रूपों में अभिव्यक्त हैं। ये सभी स्वरूप नित्य शाश्वत आनन्दमय ब्रह्मरूप ही हैं। शिव-पुराण में वे ही परात्पर ब्रह्म (शिव) नाम से जाने जाते हैं।

वेद, उपनिषद में परात्पर ब्रह्म के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, वही शिव-पुराण में भगवान शिव के सम्बन्ध में कथित है। सृष्टि

के आरम्भ में एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्त में सबका संहार करके अपने में लय कर लेते हैं।

वस्तुतः एक ही ब्रह्म (शिव) अनादि काल से विभिन्न नामों-रूपों से अभिव्यक्त है—

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"

अर्थात् एक ही तत्व स्वरूप परमात्मा शिव परात्पर, सर्वलोक, महेश्वर, सर्वगत, सर्वातीत प्रभु को ऋषियों ने विभिन्न रूपों में जाना देखा और कहा है। कल्प के प्रारम्भ में जहाँ एक ब्रह्म शिव की शक्ति के द्वारा उनके किसी रूप से शक्ति का तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन त्रिदेवों का प्राकट्य होता है, यह कभी रुद्र रूप से होता है, कभी विष्णु शक्ति या अन्य किसी रूप से, तत्वतः या वस्तुतः इनमें कोई भी भेद नहीं है। जो इनमें भेद जानता है व मानता है वह अज्ञानी है।

शिव के दक्षिण भाग से ब्रह्मा का, वाम भाग से विष्णु का और हृदय से रुद्र का प्राकट्य हुआ है। भगवान शिव स्वयं कहते हैं, 'जगत की परम कारण मैं ही हूँ। मैं ही सब का आत्मा, ईश्वर, उपद्रष्टा, स्वयं प्रकाश और भेद रहित हूँ"। त्रिगुणमयी अपनी माया के द्वारा मुझ में पालन और संहार की लीला करता हूँ, तब-तब मैं ही उस लीला-कार्य के अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन नाम-रूपों को धारण करता हूँ। ऐसे मुझ केवल अद्वितीय विशुद्ध परमात्मा को अज्ञानी लोग ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूप से देखते हैं। उपनिषद में कहा भी है—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ,
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य,
पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥

अर्थात् "अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा-सूर्य दोनों नेत्र हैं, दिशायें श्रोत्र हैं, वेद वाणी है, विश्व-व्यापी वायु प्राण रूप से हृदय में है, पृथ्वी पादरूप है—वह सब भूतों का अन्तरात्मा है।"

भूतभावन भगवान सदाशिव नित्यानन्द सुख, सम्पत्ति, ऋद्धि, सिद्धि, बल, वैभव, स्वास्थ्य, नीरोगता एवं लौकिक-पारलौकिक फलों के उदार दाता हैं, 'दाता एक शङ्कर सम नाहीं।"

अव्यय, अनन्त, अटल, अमर, भयङ्कर रुद्र रूप हैं, तो दूसरी ओर आप भोलानाथ भी हैं। निष्पक्ष और दयालु ऐसे हैं कि जिसने आपको प्रसन्न किया, उसी मनमाना वरदान दे डाला। वहाँ इस बात की परख कभी नहीं की कि ऐसा वरदान देने से अपनी और संसार की हानि होगी। दुष्ट-दुराचारियों की विजय होगी। आपकी उदारता असीम है, आपका

न्याय अनुपम है. समस्त योग शास्त्र का चमत्कार आपकी ही कीर्ति है। संगीत और नृत्यकलाओं के आविष्कर्ता और आद्याचार्य है। ताण्डव नृत्य करते समय आपने डमरू बजाया, उसी में से सात स्वरों का प्रादुर्भाव हुआ। इतना ही नहीं, व्याकरण के मूल तत्वों का विकास भी आपके डमरू ध्वनि से हुआ। काम शास्त्र की उत्पत्ति के विषय में भी कहा जाता है कि इसका आद्याचार्य नन्दी आपका अनुचर और सेवक था।

संस्कृत-साहित्य में जितनी गुप्त आध्यात्मिक विद्यायें-जितना दिव्य ज्ञान और विज्ञान है, उन सबके उपदेष्टा और गुरु महादेव जी ही है। मन्त्र, तन्त्र, आगमादि इन्हीं के उपदेश है। रसायन-शास्त्र के आद्याचार्य भी आप ही है. योगियों की आयु बढ़ाने के लिए आपने पारद-शास्त्र का आविष्कार किया।

इस प्रकार भगवान सदाशिव आर्य जाति के आद्य देवता है। आपकी पूजा अधिकांशतः लिंगरूप से पूरे विश्व में पाई जाती है, जिसका मूलाशय है कि शिव पुरुष लिंगरूप से इस प्रकृति रूपी संसार में स्थित है, यही सृष्टि की उत्पत्ति का रूप है। शिव लिंग और अर्घा ही मूलाशय में पुरुष और प्रकृति है। आपकी पूजा नितान्त प्राचीन है, शिव और भगवती शिवा इस सम्पूर्ण चराचर विश्व के आदि—माता व पिता हैं और यह सम्पूर्ण सृष्टि उनका सनातन परिवार है।

माता च पार्वती देवी,
पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च,
स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

भगवान का स्वरूप विराट् पुरुष का चित्र है। सूर्य, चन्द्र उनके नेत्र है, गंगा उनकी जटा से बहती है। काल-रूप नाग आपके आभूषण हैं, मुण्डों की माला धारण करते हैं। इस प्रकार उनका वेष अमङ्गलकारी दीखते हुए भी वे परम मङ्गलकारी है। आपकी पूजा नितान्त प्राचीन है। ऋग्वेद में आपका उल्लेख है—

त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धि-पुष्टि-वर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्यु-मोक्षीय माऽमृतात्।

यह मन्त्र महामृत्युञ्जय कहलाता है, यह मृत संजीवनी मन्त्र है। मार्कण्डेय जी ने इसी मन्त्र को जपकर अपने को अमर कर लिया। इस मन्त्र के १ लाख जप करने से शरीर की शुद्धि होती है, २ लाख के जप से सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं की प्राप्ति होती है, तीसरे लाख जप से पूर्व जन्म की बातों का ज्ञान होता है, चौथे लाख के जप से स्वप्न में भगवान शङ्कर का दर्शन होता है तथा पांचवें लाख का जप ज्योंही पूरा होता है, भगवान शिव उपासक के सामने तत्काल प्रकट हो जाते हैं। इस मन्त्र का अनुष्ठान समस्त आधि-व्याधियों को नष्ट

करके मंगल को देता है। यह महामन्त्र मृत्यु-निवारक मोक्ष का दाता है, ऐसा शिव-पुराण का मत है।

संसार में कोई ऐसा शास्त्र नहीं, कोई ऐसी कथा नहीं और कोई भी ऐसी विद्या नहीं जिसके आदि-प्रभव भगवान शङ्कर स्वयं नहीं, श्री महेश्वर आदि-सद्गुरु नाथ हैं और उमा आदि-गुरु माता हैं। कहा भी है—"ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्द मूर्तये।" और भी कहा है—"जगदादि गुरुः शिवः।"

पुराणों में भगवान शिव को समस्त विद्याओं का प्रधान देवता कहा गया है—

यस्य निःश्वसितं वेदो,
यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे,
विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

अर्थात् वेद जिसके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदों से सृष्टि की रचना की और जो विद्याओं के तीर्थ हैं ऐसे शिव की मैं वन्दना करता हूँ।

लिङ्ग-पुराण में भगवान शिव को अलिंग कहा है और प्रकृति प्रधान ही लिंग है। महेश्वर निर्गुण है, प्रकृति सगुण। सारा ब्रह्माण्ड लिंग के ही अनुरूप बनता है, सारी सृष्टि लिंग के ही अन्तर्गत है। लिंगमय है और अन्त में लिंग में ही सारी सृष्टि लय भी होती है। स्कन्द पुराण के अनुसार—

आकाशं लिङ्गमित्याहुः,
पृथिवी तस्य पीठिका।
आलयः सर्वदेवानां,
लयनाल्लिङ्गमुच्यते॥

अर्थात् आकाश लिंग है, पृथ्वी उसकी पीठिका है, सब देवताओं का आलय है, उसमें सबका लय होता है, इसीलिये इसे लिंग कहते हैं।

भगवान सदाशिव योग-विद्या के आद्य प्रवर्तक माने गये हैं। भगवान शिव स्वयं कहते हैं—

विचिन्त्य सर्वशास्त्राणि,
विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं,
योग शास्त्रं परं मतम्॥

अर्थात् मैं (शिव) ने समस्त शास्त्रों की विवेचना की, उन शास्त्रों को बार-बार विचारा और मैं इसी निश्चय पर पहुँचा कि योग-शास्त्र से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निखिलेश्वर ही भगवान सदाशिव पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं, उन्हीं से सम्पूर्ण विश्व प्रगट होता है। रक्षण पाता है तथा अन्त में उसे अपने में लय कर लेते हैं। समूचा ब्रह्माण्ड भगवान का है, लिंग रूप है और अनादि कालसे विश्व उसीने लिंग रूप भगवान सदाशिव को पूजनीय माना है।

गतांक से आगे —

क्रिया योग-६

* श्री गिरीशदेव वर्मा

शारीरिक तप—

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च शारीरं तप उच्यते ॥

(३) आर्जव—

आर्जव कहते है सरलता को, नम्रता को तथा मन, वचन व कर्म की एकता को। सरलता तपस्वी के स्वभाव का गुण होना चाहिए, जिसके हृदय में छल कपट नहीं है, वह आर्जव के गुण को धारण कर सकता है। जो अभिमानी है, बहुत अकड़ कर चलते है, मन में कुछ रखते है और कहते कुछ और है और करते कुछ और है, वे सरल स्वभाव के व्यक्ति नहीं कहे जा सकते।

दो दिन की जिन्दगी पै,
न इतना उछल के चल।
दुनिया है चल-चलाव की,
रास्ता संभल के चल ॥

इसलिए नम्रता से काम लेना चाहिए।

लेने को हरि नाम है देने को कुछ दान।
तारन को है नम्रता डूबन को अभिमान ॥

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में आर्जव को दैवी गुण कहा है। यथा—

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्

तेरहवें अध्याय में भगवान ने ज्ञान और अज्ञान की परिभाषा की है। ज्ञान की अठारह बातें बताई है, उनमें आर्जव भी ज्ञानका प्रतिरूप है। आर्जव की व्याख्या करते हुए सन्त ज्ञानेश्वर कहते है कि :—

'जैसे प्राण का सौजन्य चाहे जिसके हेतु समान ही रहता है अथवा सूर्य जैसे मुँह देखा प्रकाश नहीं करता, प्रकाश जैसे जगत को समान ही अवकाश देता है, वैसे ही जिसका मन प्रत्येक मनुष्य की ओर भिन्न नहीं होता और चलन जिसका ऐसा होता है कि मानो सब संसार उसकी पहचान का है। संसार ही मानो जिसका पुराना सम्बन्धी है, जो अपना-पराया आदि बातों की बातों नहीं जानता। हर किसी से मेल रखता है, जल के समान जो नम्र रहता है और जिसका चित्त किसी के भी विषय में नहीं हिचकता। वायु वेग के समान जिसका भाव सरल है, जिसे सन्देह नहीं उत्पन्न होता। माता के सम्मुख जाते हुए जैसे बालक को कोई सन्देह नहीं होता, वैसी ही जो लोगों को अपना मन देते हुए विचार नहीं करता, जो मन के विकार इधर-उधर

छिपाना नहीं जानता, जिसका मन आगे दौड़ता है और क्रिया पश्चात् होती है। जो अनुभव से ही तृप्त रहता है, जिसकी दृष्टि कपटी नहीं है, जिसके वचन संशयमुक्त नहीं है, जो किसी के साथ बुरा व्यवहार करना जानता। जिसकी दसों इन्द्रियां सरल, निष्कपट और निर्मल हैं। जिसका अन्तःकरण अमृत की धार जैसा सरल है वह पुरुष आर्जव की मूर्ति है और उसी में ज्ञान ने अपना घर बनाया है।'

भगवान श्रीराम भी कहते हैं कि निर्मल हृदय वाला मनुष्य ही मुझे प्राप्त कर सकता है। छल-कपट वाले मुझसे कोसों दूर रहते हैं।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

आर्जव के गुण से मुक्त पुरुष कैसा होता है? इस सम्बन्ध में महात्मा आनन्द स्वामी जी एक कथा सुनाया करते हैं जो बड़ी रोचक व हृदयग्राही है :—

'एक बहुत साधारण बहुत निर्धन सा व्यक्ति था। साधारण पढ़ा-लिखा भी था, परन्तु निर्धन बहुत था। नौकरी की तलाश में बम्बई पहुंचा और कोई नौकरी तो मिली नहीं, एक सेठजी के यहां झाड़ू देने पर नौकर हो गया। प्रतिदिन प्रातःकाल आता, लम्बी-चौड़ी दूकान में झाड़ू देता। दिन में भी कई बार सफाई करता और जब भी खाली समय मिलता, कोई न कोई किताब लेकर बैठ जाता। पढ़ता भी, लिखता भी, उसका लेख बहुत सुथरा था। सेठ ने एक दिन देखा, बोले—अरे तू लिखना जानता है? वह बोला—जी थोड़ा-थोड़ा लिख लेता हूं! सेठ ने उसे चिट्ठियां लिखने पर लगा दिया। अब वह खूब परिश्रम से खूब बता सम्भाल कर चिट्ठियां लिखने लगा। उसके लिखने का, विषय को प्रस्तुत करने का ढंग बहुत सुन्दर था। चिट्ठी में हिसाब-किताब की बात आती, तो उसे भी वह खूब अच्छी प्रकार से समझा-बुझाकर लिखता।

सेठ जी ने एक दिन ऐसा ही पत्र देखा, बोले—अरे! तू हिसाब-किताब भी जानता वह बोला—जी, थोड़ा-बहुत जानता हूं। सेठ जी ने उसे मुनीम बना दिया। फिर उसके काम से प्रसन्न होकर उसे प्रधान मुनीम बना दिया। अब दूसरे मुनीम जलने लगे। दूसरी तो कोई बात उन्हें सूझी नहीं, सोचा सेठ जी के कान भरेंगे, इसकी निन्दा करेंगे तो इस नये मुनीम की पदवी छिन जावेगी, परन्तु निन्दा करने की भी कोई बात नहीं मिली। वह सेठ के मकान में रहता था दो कमरों में। एक कमरा खुला रहता था, एक बन्द। प्रतिदिन कार्यालय जाने से पूर्व वह इस बन्द कमरे में जाता, फिर थोड़ी देर बाद बाहर निकल आता। ताला बन्द करके ताली जेब में रख कर दूकान पर पहुंच जाता और प्रातः से रात तक अपना काम करता रहता।

जलने वालों को ऐसी कोई बात मिली नहीं जिसे वे सेठ जी से कहें। तभी किसी ने उसे दूकान पर जाने के पूर्व इस बन्द कमरे में आते देखा। सन्देह हुआ कि इस कमरे में क्यों जाता है? इसको बन्द क्यों रखता है? बस, सेठ जी के कान भरे जाने लगे—यह प्रधान मुनीम बेईमान है। यह रुपया खा लेता है, हिसाब में गड़बड़ करता है। यह सेठ जी का दिवाला निकाल देगा।

सेठ जी ने सुना तो कहा—मैं इस प्रकार मानूँगा नहीं। मुझे पता है कि वह बहुत ईमानदार है। तुम लोग केवल ईर्ष्या के कारण ऐसा कहते हो।

एक दिन वह बड़ा मुनीम उसी कमरे में गया। अन्दर पहुँचकर उसने द्वार बन्द कर लिये। दूसरे लोगों ने देखा तो दौड़े हुये सेठ जी के पास पहुँचे, बोले—चलो सेठ जी, चोर पकड़ा गया। वह बेईमान मुनीम इस समय चुराये हुए रुपयों को गिन रहा है। इसी समय चलिये, वह रुपयों के साथ पकड़ा जायगा।

सेठ जी तेजी के साथ पहुँचे। देखा सचमुच कमरे का द्वार अन्दर से बन्द है। गर्जकर बोले, कौन है अन्दर, दरवाजा खोलो।

बड़े मुनीम ने कहा—मैं हूँ महाराज!

दूसरे लोगों ने जलती आवाज में कहा—देखिये, हम ठीक कहते थे। सेठ जी ने क्रुद्ध होकर कहा—अन्दर क्या कर रहे हो? दरवाजा खोलो।

बड़े मुनीम ने उत्तर दिया—जी, कोई विशेष काम तो नहीं कर रहा हूँ।

सेठ जी गर्जे—फिर दरवाजा क्यों नहीं खोलते हो?

बड़े मुनीम ने कहा—अच्छा अन्नदाता! थोड़ी देर ठहरिये, खोल दूँगा दरवाजा।

सेठ जी चिल्लाये—अभी इसी समय खोलो नहीं तो हम दरवाजा तोड़ देंगे।

बड़े मुनीम ने अन्दर से द्वार खोल दिया। सेठ जी और दूसरे लोग कमरे में प्रविष्ट हुए। देखा कि वहाँ एक साधारण बक्स के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, सारा कमरा खाली है।

सेठ जी ने कहा—इस सन्दूक में क्या है? मुनीम जल्दी से सन्दूक पर बैठ गया। हाथ जोड़कर बोला—अन्नदाता! यह मत पूछो। सन्दूक बन्द ही रहने दो।

दूसरे लोगों ने कहा—इसी में तो सब है, इसीलिये खोलने नहीं देता है।

सेठ जी ने कहा—क्या है इसमें खोलो? हम देखना चाहते हैं।

मुनीम ने बैठे-बैठे हाथ जोड़ कर कहा—इसमें कुछ नहीं है महाराज! इसे न खुलवाइये, इसमें काम की कोई वस्तु नहीं है।

सेठ ने गुस्से में कहा—हट जाओ आगे से, हम इसे खोलकर देखेंगे।

मुनीम की आँखों में आँसू आ गये। धीरे से वह उठा और एक ओर खड़ा हो गया। सेठ जी ने अपने हाथ से सन्दूक खोला। अन्दर देखा आश्चर्य से पूछा, अरे यह क्या है? उसमें थी एक फटी हुई धोती, एक मैला सा कुर्ता और एक पुराना टूटा हुआ जूता।

सब लोगों ने उन वस्तुओं को देखा, कोई

योगाचार्य भगवान् बुद्ध

* श्री डा० विजयसिंह, गोरखपुर

बुद्धदेव के यथार्थ स्वरूप को न जानने वाले अन्तरानुभूति-हीन विद्वानों ने भगवान् बुद्ध पर अनीश्वरवादी एवं अनात्मवादी होने का अभियोग लगाते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि ईश्वर एवं आत्मा विषयक प्रश्नों का समाधान भगवान् बुद्ध ने करने की चेष्टा ही नहीं की है। शिष्यों द्वारा इन प्रश्नों के उठाये जाने पर भी उन्होंने इन प्रश्नों को उपेक्षित भाव से ही ग्रहण किया तथा ऐसे प्रश्नों पर वे सदैव मौन रहे। इससे कदापि यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि भगवान् बुद्ध आत्मा एवं ईश्वर को न मानने वाले नास्तिक थे। भगवान बुद्ध से वत्सगोत्र (एक भिक्षु) ने जब आत्मा है या नहीं ऐसा प्रश्न किया? उस समय भगवान उसे 'हां' या 'ना' उत्तर नहीं देते हैं, उसको तर्क संगत उत्तरों द्वारा संतुष्ट करके अपने मध्यम-मार्गीय योग की ही व्याख्या करते हैं। कुमारलात में इसी प्रश्न के के बारे में एक श्लोक है जिसे हम उद्धृत करते हैं—

दृष्टिश्चात्मभेदे चापेक्ष्य,
भंगं च कर्मणाम्।

[पिछले पृष्ठ का शेष]

भी इनका अर्थ नहीं समझ सका। बड़े मुनीम ने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर भूमि की ओर देखते हुए कहा ये वे वस्त्र हैं महाराज, जिन्हें पहनकर कई वर्ष पूर्व मैं इस नगर में आया था और आपकी सेवा में उपस्थित हुआ था। आपसे नौकरी देने की प्रार्थना की थी और आपने कृपा करके मुझे दूकान में झाड़ू देने की नौकरी दी थी। आपकी उस कृपा को मैं भूल न जाऊँ, मैं अपनी वास्तविकता को भूल न जाऊँ। मेरे हृदय में कभी अभिमान न जाग उठे, इसलिए प्रतिदिन प्रातः काल दूकान पर आने के पूर्व इन वस्त्रों को देखता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभु! मुझे अभिमान से बचा और मुझे शक्ति दे कि मैं अपने अन्नदाता की सेवा अधिक से अधिक परिश्रम और ईमानदारी के साथ करूँ।

सेठ जी ने यह बात सुनी तो उनकी आंखों में आंसू आ गये। आगे बढ़कर मुनीम जी को अपने हृदय से लगा लिया और बोले—धन्य हो मुनीम जी! तुम्हारी ही भांति सब लोग करें तो दुनियां स्वर्ग बन जाय। वास्तव में तुम सरलता व आर्जव की मूर्ति हो।

देशयन्ति बुद्धा धर्मं,
व्याघ्रीपोतापहारवत् ॥

जैसे व्याघ्री अपने बच्चे को अति निष्ठुरता से दांतों से नहीं पकड़ती और न अति शिथिलता से ही, उसी प्रकार बुद्ध पूछे जाने पर कि आत्मा है या नहीं, विधेयात्मक या निषेधात्मक कोई उत्तर नहीं देते।

दुर्जनतोष न्यायानुसार भी जिस जिस वस्तु की मान्यता हो अथवा न हो यदि उसे साधन में लगाकर छोड़ दिया जावे तो यथार्थ वस्तु का बोध साक्षात्कार होने पर स्वतः ही हो जावेगा। आत्मा अथवा ईश्वर वाणी या अन्य किसी माध्यम द्वारा वर्णित नहीं हो सकता। कहा गया है—"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य।" अतः ऐसे प्रकरणों से अथवा जिन भूमिकाओं का अभी साधक को अनुभूति नहीं हो रही है, उसके बारे में आचार्य के पास केवल प्रश्न करने से सत्य समाधान नहीं होता है। साधक की श्री गुरुदेव द्वारा प्रदत्त साधना तथा आगे चलकर योग मार्ग में उसकी अनुभूतियां ही स्वयं आचार्य का कार्य करने वाली बन जाया करती हैं। "यत्र मन्त्रणा भूमि" तथा "योगेन योग उपाध्याय" वाली बातें साधक के अन्तःकरण में स्वयं प्रभासित होने लगती हैं। अतः भगवान बुद्ध ऐसी मान्यताओं के बारे में मौन हैं, जिनके होने या न होने से जीव के निर्वाणोन्मुखी होने की प्रक्रिया में (उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग) में कोई बाधा नहीं पड़ती। भगवान बुद्ध अपने शिष्यों का परिनिर्वाण के समय अन्तिम ये शब्द कहे थे—

"अपने निर्वाण के लिए बिना प्रमाद के यत्नशील हो। तुम अब अपने लिए स्वयं दीपक हो "अत्त दीपा विहरथ" दूसरे का सहारा न ढूंढो।"

बुद्ध का जीवन—

भगवान बुद्ध के आविर्भाव काल में भारत अनेकों मतमतान्तरों का अखाड़ा बना हुआ था। एक तरफ ब्राह्मण वैदिक यज्ञादि द्वारा स्वर्ग तथा तुच्छ गतियों को प्राप्त करने-कराने के लिए संलग्न थे, वहीं श्रावकों में जो आस्तिक व नास्तिक दो प्रकार के हुआ करते थे। वे मात्र तप को ही शक्ति अर्जन का साधन समझते थे तथा घोरतम रूप से शरीर को काट देने से ही मुक्ति सिद्धि की उपलब्धि ही इनका सिद्धान्त था। ऐसे श्रावकों के ऐन्द्रजालिक कार्यों की महत्ता जन-मानस में आतंक रूप धारण किये हुए थी। हां, जैन धर्म का भी उस समय अपना विशिष्ट स्थान था। इनमें भी तपश्चर्या की प्रधानता थी, बल्कि ब्राह्मण-धर्म में भी सैंकड़ों कहे जाने वाले वैदिक, परन्तु इनके अनगढ़े सिद्धान्त प्लवन-युक्त थे। अतः जब भगवान बुद्ध को घटनाक्रमों से इस जग की नश्वरता का भान हुआ तो वे राजगृह से निष्क्रमण कर जंगल की ओर

चल पड़े थे। भगवान बुद्ध का जन्म माता महामाया के गर्भ से अलौकिक ढङ्ग से हुआ था। जब वे अपने मातृगृह जा रही थीं, जन्म स्थान लुम्बिनी नामक एक जंगल था। बौद्ध-ग्रन्थों में इनके जन्म के समय अनेकों परिहार्य हुए ऐसा वर्णन है। परिहार्य का तात्पर्य अलौकिक घटना-क्रमों जैसा जानना होता है। महाराज शुद्धोधन इनके पिता थे। इनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। भगवान बुद्ध का जन्म क्षत्रिय कुल के गौतम गोत्र में हुआ था। इनका नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ ने राजकुमारों की भांति शिक्षा प्राप्त की। इनके पिता वैदिक धर्म के अनुयायी थे। सिद्धार्थ बचपन से ही विचारशील थे, इसलिए इनकी उत्सुकता जीवन के रहस्यों को जानने के लिए बढ़ने लगी। सांसारिक सुखों से ये विरक्त हो गये। रोगी, वृद्ध, मृत व्यक्ति एवं संन्यासी को एक दिन क्रमशः देखकर इनके मन में बड़ा उद्वेग उत्पन्न हुआ। अन्ततोगत्वा इन्होंने घर से अभिनिष्क्रमण किया। यह तपोवनों में प्रसिद्ध आचार्यों के पास अपनी जिज्ञासा लेकर गये। उस समय के प्रसिद्ध तापस "अराड़" एवं "उद्दक-रामपुत्र" से इन्होंने भेंट की और पूछा कि—जन्म-मरण रोग से जीव कैसे मुक्त हो सकता है? परन्तु आचार्यों की पहुँच इतनी न थी कि वे ऐसे मौलिक प्रश्नों का उत्तर उत्तम अधिकारी को देकर तुष्ट कर देते। अतः सिद्धार्थ ने स्वयं विचार किया कि मुझमें भी श्रद्धा है, वीर्य है, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा है, मैं स्वयं धर्म का साक्षात्कार करूँगा।

निश्चित ही तापसों की तप प्रक्रिया जो उन दिनों पराकाष्ठा पर थी, उसका प्रभाव सिद्धार्थ के मानस पर पड़ा होगा। उन दिनों तापसों में कोई सन का कपड़ा पहनता था, कोई कुश चीर, कोई-कोई केश कम्बल धारण करता था, कोई कण्टकोपाश्रय (कांटे पर शयन करना) इत्यादि कठिन व्रतों को धारण किया करते थे। कोई गोव्रतिक, कोई मृगव्रतिक, कोई उञ्छवृत्ति के होते थे। ये हिम-वात-सूर्यादि दुःख को सहन करके अनेक प्रकार से शरीर को आतापन-परितापन करते थे। इनका विश्वास था कि कायिक दुःख से ही सुख की प्राप्ति होती है। सिद्धार्थ ने भी नेरञ्जना नदी के तट पर रहकर अपने पाँच अन्य भिक्षुओं के साथ ६ वर्ष कठोर तपस्या की। क्योंकि उस समय नैष्ठिक-पद की प्राप्ति के लिए तप ही मात्र आवश्यक समझा जाता था, इस अनशन व्रत को सिद्धार्थ एवं साथियों ने समझ कर किया था कि इससे जन्म-मरण पर विजय प्राप्त होगा। वे मात्र एक तिल-तण्डुल पर रहने लगे, परन्तु परिणामस्वरूप सिद्धार्थ अत्यन्त कृश हो गये। वह अस्थि-मात्र थे, उस समय उनके अशान्त मन में यह विचार उठा

कि दुर्बल उस परम-पद को नहीं पा सकता। ऐसा विचार करके सिद्धार्थ पुनः भोजन करने लगे। अब उनका शरीर व मन स्वस्थ हुआ, तब वे गया के एक पीपल के वृक्ष के नीचे पद्मासनबद्ध हो दृढ़ संकल्प करके समाधि की प्राप्ति के लिए बैठे। उन पांच साथी भिक्षुओं ने पहले ही इनसे असन्तुष्ट होकर इनका साथ छोड़ दिया था। सिद्धार्थ का संकल्प बड़ा ही दृढ़ था। उन्होंने उस दिन प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं कृतकृत्य नहीं होता, तब तक इसी आसन पर बैठा रहूँगा। रात्रि के पहले पहर में ही उनको अपने पूर्व जन्मों का ज्ञान हुआ, दूसरे याम में दिव्य-चक्षु प्राप्त हुआ, अन्तिम याम में बारह प्रतीत्य-समुत्पाद का साक्षात्कार हुआ और अरुणोदय में उनको सर्वज्ञता का प्रत्यक्ष हुआ, यही बुद्धत्व है। वे इसी दिन से बुद्ध कहलाने लगे। समाधि से उठकर भगवान बुद्ध ने कहा—कष्टमय जन्म बार-बार लेना पड़ा। मैं गृहकारक की खोज में संसार में व्यर्थ भटकता रहा किन्तु गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया है। अब तू फिर गृह-निर्माण न कर सकेगा? तेरी सब कड़ियां टूट गईं, गृह-शिखर ढह गया। चित्त-निर्वाण का लाभ हुआ, तृष्णा का क्षय देख लिया।

अनवरत सात सप्ताह वे कभी इस वृक्ष के, कभी उस वृक्ष के नीचे बैठकर निर्वाण-सुख का आनन्द लेते रहे। भगवान बुद्ध ने पुनर्जन्म परलोक में विश्वास दिलाया। वे ब्राह्मणों के लोकवाद और देववाद मानते थे। वे देव, यक्ष, किन्नर, असुर, प्रेत की सत्ता और स्वर्ग-नरक को मानते थे। हम ऊपर कह चुके हैं कि वे नास्तिक नहीं थे, वे कर्म और कर्म फल को मानते थे। बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् देवताओं की प्रार्थना तथा महा-करुणा से प्रेरित हो विशिष्ट मध्यम-मार्गीय योग का प्रचार बृहत रूप में भगवान बुद्ध ने किया। सर्वप्रथम वाराणसी के सन्निकट सारनाथ में उन्होंने अपने साथ तप करने वाले उन पांचों भिक्षुओं को सारोपदेश देकर बुद्धत्व की ओर लगाया। आगे चलकर भगवान का प्रचार-कार्य इतना बृहत हुआ कि अनेकों संघ एवं महासंघों का निर्माण हुआ। जिनमें पहले मात्र पुरुष ही दीक्षित हुआ करते थे, परन्तु बाद में भगवान बुद्ध के परम-प्रिय भक्त आनन्द के आग्रह पर स्त्रियों को भी संघ में प्रवेश की अनुमति उन्होंने दे दी थी। भगवान बुद्ध की माता की बहिन महा प्रजापति गौतमी ने, जिन्होंने महामाया की मृत्यु के पश्चात् भगवान बुद्ध का पालन-पोषण किया था। भिक्षुणी होने की इच्छा प्रकट की। भगवान ने मना कर दिया। आनन्द ने गौतमी का पक्ष लेकर भगवान से तर्क किया और कहा कि क्या स्त्रियों को निर्वाण का अधिकार नहीं है? भगवान को स्वीकार करना पड़ा था। तब आनन्द ने कहा कि क्या भगवान की विमाता ही, जिन्होंने भगवान का लालन-पालन किया,

श्री गुरु-आज्ञा-पालक उपमन्यु—

श्री गुरुदेव की आज्ञा-पालन ही सर्वस्व है

● ब्रह्मचारी श्री वीरेन्द्रस्वरूप

हमारे आर्य ग्रन्थों में गुरुदेव की महिमा का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। एक मोक्षाकांक्षी के जीवन में गुरुदेव का क्या स्थान है, यह श्री गुरुगीता का अवलोकन करने पर पूर्णतः स्पष्ट हो जावेगा। जब हम गुरुगीता उठाते हैं तो देखते हैं कि श्रीसद्गुरुदेव ही अलख निरञ्जन परमात्मा है। यथा—

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं,
व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
विन्दु नाद कलातीतं,
तस्मै श्रीगुरवे नमः ।

अर्थात् जो चैतन्य, शाश्वत, शान्त, आकाश से परे विन्दु, नाद एवं कला से अत्यन्त परे है, माया-रहित है, निरञ्जन है, उन सद्गुरुदेव के लिए बारम्बार नमस्कार है।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में तो बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में गुरुदेव की महिमा बतलाते हुए कह दिया है कि—

वेदशास्त्राणि चान्यानि,
पदपां सुमिव त्यजेद् ।
गुरुभक्ति सदा कुर्यात्,
श्रेयस भूयसे नरः ॥

[पिछले पृष्ठ का शेष]

इस उच्च पद से वञ्चित रह जावेगी। इस तर्क से भगवान भक्त से हार गये और उन्हें विमन अनुमति देनी पड़ी।

अहिंसा व निर्वाण ये दो ज्ञान व योग जो स्वर्ग-विमुक्ति प्रापक है तथागत भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित हैं। अगले लेख में बौद्ध-योग, बौद्ध तन्त्र इत्यादि का वर्णन किया जावेगा। साथ ही 'सिद्धयोग' के सन्दर्भ में बुद्ध के योग की समालोचना करने का दृढ़ प्रयास लेखक का होगा यथार्थ रूपसे जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण के बाद जब योग कालान्तर में लुप्त होने लगा था, उस समय वैदिक कर्मकाण्ड एवं पौरोहित्य जैसे आडम्बरों के विध्वंस हेतु भगवान बुद्ध का जन्म हुआ। आपने पुनः मोक्ष एवं समाधि की उपयोगिता एवं धर्म की पराकाष्ठा का बोध जन-जीवन को प्रदान किया। श्रीमद्भागवत में भगवान बुद्ध के बारे में वर्णन आता है।

—●—

अर्थात् जो अपना भूरि-भूरि कल्याण चाहता है, वह वेद, शास्त्र, पुराणादि से विहित कर्म की उपासना आदि का विषय है, उन सबको छोड़ करके परम श्रेय लाभ करने के लिए श्री गुरुदेव की भक्ति करे।

योगाधिपति भगवान शिव जगदम्बा पार्वती से कहते हैं कि—

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मः गुरुनिष्ठा परंतप।
गुरोः परतरं नास्ति सत्यं-सत्यं वरानने॥

अर्थात् सद्गुरुदेव ही पूज्य है, गुरुदेव ही धर्म है, गुरुनिष्ठा ही महान् तप है। गुरुदेव से बढ़कर कुछ भी नहीं है। हे वरानने! यह सत्य है, सत्य है।

सद्गुरुदेव के चरण-कमलों की महिमा अपार है। सद्गुरुदेव के चरण-कमलों के नखों की ज्योति का ध्यान करने से जीव को दिव्य-दृष्टि मिल जाती है। बद्ध मुक्त हो जाता है, जीवत्व, शिवत्व में परिणत हो जाता है। यथा—गोस्वामी श्री तुलसीदास के शब्दों में—

श्री गुरु पदनख मणिगण ज्योती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सोइ प्रकासू।
बड़े भाग्य उर आवहि जासू॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥

जो गुरुदेव जीव को शिव बना देते हैं, अपने स्वरूप का बोध करा देते हैं, विपत्तियां हर लेते हैं, आनन्द से भर देते हैं। जो गुरुदेव शिष्य के शरीर में प्रविष्ट हो उसमें फूंककर उसको अपना रूप दे देते हैं, उन गुरुदेव के प्रति हमारा कैसा व्यवहार होना चाहिए? यह विचारणीय है। उनका हम क्या प्रत्युपकार कभी कर सकते हैं? कभी नहीं! मात्र उनकी आज्ञाओं के पालन में तत्पर रहना हमारा परम कर्तव्य हो जाता है। हमको सदैव उनकी आज्ञा का पालन करने का सामर्थ्य प्राप्त हो, यही मेरे अन्तःकरण की कामना है।

यहां पर मैं ऐसे ही एक गुरुभक्त गुरु-आज्ञा-पालक बालक उपमन्यु की कथा आप सबके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूं। इस पवित्र बालक के पवित्रतम् जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर हम गुरु आज्ञा पालक बनें। इसी लालसा को लेकर वर्णन कर रहा हूं। वह इस प्रकार है—

महर्षि आयोद के दूसरे शिष्य का नाम उपमन्यु था। श्री गुरुदेव ने उस बालक को गायें चराने का कार्य दे रखा था। वह दिन भर गुरुदेव की गायें जंगलमें ले जाकर चराता और सायंकाल गौओं को लेकर अपने आश्रम में वापस लौटता। एक दिन गुरुदेव ने उसे हृष्ट-पुष्ट देखकर पूछा—बेटा उपमन्यु! हम

सुझे खाने को तो देते नहीं, तू इतना हृष्ट-पुष्ट कैसे है ?

उपमन्यु बोला सद्गुरुदेव ! मैं भिक्षा मांग कर अपने शरीर का निर्वाह करता हूं।

गुरुदेव ने कहा—बेटा ! बिना गुरुदेव को अर्पण किये भिक्षा को पा लेना पाप है। अतः जो भी भिक्षा लाया करो पहले मुझे अर्पण कर दिया करो। मैं दूं तब खाना चाहिए। हमारे शास्त्रों का सिद्धान्त है कि—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो,
मुच्यन्ते सर्व किल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वधं पापा,
ये पचन्ति आत्मकारणात्॥

अर्थात् यज्ञावशेष का ही भोजन करने वाले सन्त लोग सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं। जो केवल अपने लिए ही भोजन पकाते हैं, वे केवल पाप को ही खाते हैं। इसलिये आहार को यज्ञावशेष बनाने के लिए अखिल सृष्टि-सञ्चालक सद्गुरुदेव को अर्पण करके ही उनसे आप्त प्रसाद से उदरपूर्ति करे।

ऐसी आज्ञा मिलने पर उपमन्यु नतमस्तक होकर कहा—सद्गुरुदेव ! भविष्य में ऐसा ही करूंगा और उस दिन से रोज भिक्षा लाकर गुरुदेव को अर्पण करने लगा। सद्गुरुदेव तो उसकी परीक्षा ले रहे थे, कसौटी पर कस रहे थे, अग्नि में तपाकर कुन्दन बना रहे थे। उपमन्यु जो भिक्षा लाता उसे पूरी की पूरी रख लेते, उसे खाने के लिए कुछ भी न देते।

थोड़े दिन बाद श्री गुरुदेव ने देखा—उपमन्यु तो पहले की ही भांति हृष्ट-पुष्ट है। तब उन्होंने उपमन्यु को बुलाया और कहा—बेटा उपमन्यु ! तुम आजकल क्या खाते हो ? उपमन्यु बोला—प्रभो ! पहली भिक्षा मांगकर मैं आपको अर्पण कर देता हूं। फिर दुबारा जाकर भिक्षा मांग लाता हूं, उसी पर अपना निर्वाह करता हूं।

श्री गुरुदेव ने कहा—यह भिक्षा धर्म के विरुद्ध है, इससे गृहस्थियों पर भी बोझ पड़ेगा और दूसरे भिक्षाटन करने वाले को भी संकोच होगा। अतः आज से दुबारा भिक्षा मत मांगना। शिष्य ने सद्गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और दूसरी बार भिक्षा मांगना छोड़ दिया।

कुछ दिन समय व्यतीत होने पर श्रीगुरुदेव ने उपमन्यु को पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट देखा और पूछा—उपमन्यु ! अब तुम क्या खाते हो ?

उपमन्यु बोला—मैं अब केवल गौओं का दूध पीकर रहता हूं।

सद्गुरुदेव ने कहा—यह तुम बड़ा अनर्थ कर रहे हो, मेरे बिना पूछे गौओं का दूध कभी नहीं पीना चाहिए। आज से गौओं का दूध

मत पीना। शिष्य उपमन्यु ने यह आज्ञा शिरोधार्य कर उस दिन से गाय का दूध पीना छोड़ दिया।

थोड़े दिन बाद गुरुदेव ने उपमन्यु को हृष्ट-पुष्ट देखा और पूछा—बेटा! तुम दुबारा भिक्षा भी नहीं लाते और गाय का दूध भी नहीं पीते, फिर भी तुम्हारा शरीर अभी का त्यों बना है! तुम क्या खाते हो?

उपमन्यु बोला—सद्गुरुदेव! मैं बछड़ों के मुख से गिरने वाले फेन को पीकर अपनी भूख मिटा लेता हूँ।

श्री गुरुदेव ने कहा—देखो, यह तुम ठीक नहीं करते। बछड़े दयावश होकर तुम्हारे लिए अधिक फेन गिरा देते होंगे, इससे वे भूखे रह जाते होंगे। तुम बछड़ों का फेन भी मत पिया करो। उपमन्यु ने इस आज्ञा को भी विनम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया और उस दिन से फेन पीना छोड़ दिया।

अब उसके उदर-पूर्ति का कोई भी साधन नहीं रहा—

कष्टात्कष्टतरी क्षुधा।

सभी कष्टों से बढ़कर सबसे बड़ा कष्ट है भूखा रहना। भूखे रहने पर मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करता है—

बुभुक्षितं किं न करोति पापम्।

अतः द्वन्द्व सहन करने में भूख को सहन करना भी एक तप महान् तप है। भूख के समय संयमित रहना महान् तप है। सद्गुरुदेव, बालक उपमन्यु को तपा तपाकर उसके अन्तःकरण को निर्मल बना रहे थे।

अब बालक उपमन्यु उपवास करने लगा। रोज भूखा रहता था और दिन भर गौओं के पीछे घूमता था। भूखा रहते-रहते उसकी सब इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं। उसने एक पौधे के पत्ते तोड़ने पर दूध-सा द्रव निकलते हुए देखा। वह अत्यन्त भूखा था और उसने पत्ते तोड़-तोड़कर उसका दूध खूब पीया। वह पौधा अकौए का था। उसके विषैले प्रभाव से उसकी दोनों आँखें फूट गईं। फिर भी उसे गौओं के पीछे तो जाना ही था। उस जंगलमें धीरे-धीरे आवाज के सहारे वह गौओं के पीछे चलने लगा। आगे एक कूआँ था, उसी में वह गिर पड़ा।

सद्गुरुदेव उसके साथ निर्दयता के कारण ऐसा बर्ताव नहीं करते थे, वे तो उसे पक्का बनाना चाहते थे। कछुआ स्वयं तो जल में रहता है, किन्तु अपने अण्डों को रेत में रखता है। जल में रहता हुआ भी मन के संकल्प से अण्डों को सेता रहता है, इसी से अण्डे वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार ऊपर से तो गुरु जी ऐसा व्यवहार करते थे, किन्तु भीतर से सदा उन्हें उपमन्यु की चिन्ता लगी रहती थी। रात्रि में जब उपमन्यु नहीं आया तो उन्होंने दूसरे शिष्य से पूछा—उपमन्यु अभी

लौटकर नहीं आया। सोचें तो लौटकर आ गई। मालूम होता है, बहुत कष्ट सहते सहते वह दुःखी होकर भूख के कारण कहीं भाग गया। चलो, उसे जंगल में चलकर ढूँढें। यह कहकर श्रीगुरुदेव जंगल में उपमन्यु को खोजने लगे। सर्वत्र वे जोर-जोर से आवाज देते—बेटा उपमन्यु! तुम कहां हो? बेटा उपमन्यु! तुम कहां हो? तुम मेरे पास जल्दी आओ!

कुयें में पड़े हुए उपमन्यु ने श्री गुरुदेव की आवाज सुनली। उसने वहीं से जोरसे कहा—गुरुजी! मैं यहां कुयें में पड़ा हूं।

सद्गुरुदेव वहां पहुंचे, सब हाल सुनकर वे हृदय से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—बेटा! ऋग्वेद की ऋचाओं से तुम देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार की स्तुति करो, वे तुम्हें आंखें दे देंगे, उसने वैसा ही किया। स्वर के साथ वैदिक ऋचाओं से उसने अश्विनीकुमारों की प्रार्थना एवं आवाहन किया। उससे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने उसकी आंखें दीव्र ही क्षण मात्र में ठीक कर दी और उसे एक पुआ देकर कहा कि इसे तुम खालो।

उपमन्यु बोला—देवताओं! मैं अपने सद्गुरुदेवको बिना अर्पणकिये इस पुआ को कभी नहीं खा सकता।

अश्विनीकुमारों ने कहा—पहले तुम्हारे गुरुदेव ने जब हमारी स्तुति की थी, तब हमने उन्हें भी पुआ दिया था और उन्होंने बिना गुरुदेव जी को अर्पण किये ही उसे खा लिया था।

उपमन्यु ने कहा—चाहे कुछ भी हो, वे मेरे सद्गुरुदेव हैं, मैं ऐसा नहीं कर सकता। तब अश्विनीकुमारों ने उसे सब विद्याओं को आ जाने का आशीर्वाद दिया।

बाहर आने पर श्री गुरुदेव जी ने उपमन्यु को छाती से लगा लिया और देवताओं के आशीर्वाद को पूर्णतः सफल होने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार बालक उपमन्यु गुरु-सेवा से श्री गुरुदेव जी के मन को प्रसन्न कर ब्रह्म-विद्या को प्राप्त कर अपने आत्म-स्वरूप में स्थित हो गया। वही कृतकृत्य बालक उपमन्यु आगे चलकर महर्षि उपमन्यु के नाम से विख्यात हुआ।

इसीलिए कहा गया है कि—

मातृवान्, पितृवान्, आचार्यवान्, पुरुषोवेदः।

अर्थात् मां वाला, पिता वाला या आचार्य वाला ही परमात्मा को प्राप्त कर पाता है।

उपमन्यु आचार्यवान था, श्री गुरुदेव जी के पूर्ण नियन्त्रण में रहकर उनकी प्रत्येक आज्ञा का पूर्ण पालन किया। ऐसे गुरुनिष्ठ बालक के लिए योगाधिपति भगवान शिव कहते हैं—

धन्या माता पिता धन्यो,
धन्यो वंशः कुलं तथा।
धन्या च वसुधा देवि,
गुरुभक्ति सुदुर्लभाः॥

अर्थात् ऐसे बालक को जन्म देकर हे देवि! मां उसको धन्य हो जाती है। उसका पिता ऐसे बालक को जन्म देकर कृतार्थ हो जाता है एवं जिस कुल में वह जन्म लेता है उसको वह सब प्रकार से पवित्र बना देता है तथा हे देवेश्वरी! जिस स्थान पर वह रहता है वहां की पृथ्वी भी अपने को धन्य मानती है। गुरु-भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है।

यदि हम उपमन्यु बालक की तरह श्री सद्गुरुदेव जी की आज्ञा का पालन करने वाले बन जायें तो जन्म लेना सार्थक है। अन्यथा—

परिवर्तिने संसारे,
मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन,
याति वंशः समुन्नतिम्॥

(भर्तृहरि जी)

अर्थात् इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं मरता तथा कौन नहीं जन्म लेता है? सभी मरते हैं और सभी जन्म लेते हैं। किन्तु वास्तव में उसी का जन्म लेना सार्थक है, जिसने अपने परम लक्ष्य श्री गुरुदेव जी के चरण कमलों में उनकी आज्ञा के पालन में अपने को न्यौछावर करके अपने को समुन्नत किया अन्यथा इस अस्थिर संसार में हमेशा लोगों का जन्म-मरण होता रहता है जो व्यर्थ ही चोली चला जाया करता है।

यह सद्गुरुदेव हमें सद्बुद्धि प्रदान करें।

प्रबुद्धं शुभेशं गुरुदेव नमामि।

—❀ क्लेश कर्म से निवृत्ति ❀—

न गन्धं न रसं रूपं न स्पर्शं न निःस्वनम्।
नात्मानं च परत्वं च योगी युक्तः समाधिना॥

समाधि में स्थित योगी को गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन पांच विषयों का बोध नहीं होता वह अपना-पराया कुछ नहीं जानता जीवात्मा-परमात्माको एक ही मानता है अर्थात् साधक जब समाधि में चला जाता है, तब उसको आनन्द ही आनन्द भासता है। वहाँ द्वैत पना नहीं मालूम होता अर्थात् समाधि में अद्वितीयता मिल जाने से क्षुधा, तृषा, मानापमान सुख-दुःख, शीत, उष्णादिक का ज्ञान नहीं रहता। क्योंकि यह सब द्वैत के परिणाम है। समाधि में द्वैत न रहने से क्लेश कर्म से सहज ही निवृत्ति हो जाती है।

—योग संध्या से

योग में शुद्धि आवश्यक

❀ महात्मा विश्रामसिंह 'योगाम्बाजी' दशाश्वमेध-तीर्थ, करनाल

जीवन में शुद्धि की परम आवश्यकता है। साधारण गृहस्थ से लेकर परम ज्ञानी, सन्त, भक्त एवं योगी के लिए शुद्धि-संस्कार परमोपयोगी सिद्ध हुआ है शुद्धि जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाती है।

शुद्धि—स्वच्छता, शुचिता, सात्त्विकता आदि इसको अनेक प्रकार से जाना जा सकता है। शुद्धि दो प्रकार की मानी गई है। एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक।

बाह्य शुद्धि —

शरीर, वस्त्र, स्थान, भोजनादि की शुद्धता।

आन्तरिक शुद्धि —

मन और अन्तःकरणादि की शुद्धि।

फल —

बाह्य शुद्धि से स्वयं करने वाले का तो चित्त प्रसन्न रहता ही है, दूसरे व्यक्तियों का भी स्वच्छ स्थान, वस्त्र और शरीर देखकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है और प्रभाव पड़ता है। शुद्ध भावना का उदय होता है।

आन्तरिक शुद्धि से चित्त की वृत्तियां निर्मल होकर अभ्यास को दिव्य बना देती हैं। वाणी में मधुरता, स्पष्टवादिता तथा सत्य स्वरूप का ही प्रस्फुरण होता है। आन्तरिक शुद्धि केवल सतत् प्रयत्न से ही सम्भव होती है। पूर्व जन्म के उपार्जित दिव्य स्वरूप के कारण, सत्सङ्ग लाभ से, उत्तम धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय एवं मन से भी दिव्य-वृत्ति बनती है।

भक्त, सन्त, महात्मा, तपस्वी, ज्ञानी के हृदय भी परम शुद्ध एवं निर्मल हो जाते हैं और उनकी वाणी परम अलौकिक एवं पावन विचारों का ही उद्रेक करती है।

आन्तरिक शुद्धि सतत् सद्विचारों का मन्थन करने से भी सम्भव होती है। सद्-विचार शरीर की सभी चेष्टाओं को ही बदल देते हैं। शुद्धि से दिव्यता प्राप्त होने के कारण सद्-विचार प्रभावपूर्ण और सर्वजन-हिताय ही प्रकट होते हैं।

योग तो सब प्रकार से स्वच्छता, निर्मलता एवं पावनता पर ही प्रगति कर सकता है। सर्व प्रथम शरीर की वस्त्र एवं स्थान की शुद्धता या स्वच्छता होनी चाहिए। आहार

की सात्विकता और शुद्धता का मन पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ता है।

गीता में कहा गया है, "आहार शुद्धौ सत्व शुद्धौ" आहार की शुद्धता से सत्व की शुद्धता होती है। इस प्रसंग में एक महात्मा का अनुभव लिख लेना अप्रासंगिक न होगा। परम शुद्धात्मा, सत्व की जीवनचर्या, तपस्वी-वृत्ति, भिक्षाटन द्वारा निर्वाह, परम सन्तोषी एवं भगवद्भक्त महात्मा एक राजा के दुराग्रह के कारण राज-महल में जाकर भिक्षा करने के लिए विवश हो गये। पाकशाला में ब्राह्मण रसोइये ने भण्डारी के दिये हुए चोरों के चावल पकाकर महात्मा को खिला दिये। परिणामतः महात्मा ने स्नानागार में खूँटी पर टँगे हुए नौलखा हार को अपनी झोली में डाल लिया और वन की ओर चल दिये। महात्मा के कुटिया पर पहुँचने से पहले ही उदर-पीड़ा प्रारम्भ हो गई। कुटिया पर पहुँचते ही महात्माको दस्त होने लगे। महात्मा का ऐसा बुरा हाल हो गया कि वह परेशानी से दुःखी होने लगे। परिणामतः महात्मा अत्यन्त कृश और निर्बल हो गया। उदर से जब सारा अन्न प्रभाव नष्ट हो गया तो महात्मा का मन शुद्ध हो गया। सम्यक् ज्ञान ध्रुव स्मृति अन्तस् में हो गई आई और वह अपनी अज्ञानतावश चोर-वृत्ति के लिए पश्चात्ताप करने लगा।

इसी अवस्था में महात्मा राज महल की ओर चल दिया। महात्मा को इतनी जल्दी वापस आने पर राजा को विस्मय होने लगा। उसने राज-महल से उतर कर महात्मा को दण्डवत् प्रणाम किया और शीघ्र वापस आने का कारण पूछा। महात्मा ने रनिवास में जहां वे ठहरे थे चलने के लिए राजा से कहा।

उचित आसन पर बैठने के पश्चात् महात्मा ने राजा से भोजन के विषय में सारा वृत्तान्त जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। साथ ही झोली से नौलखा हार निकालकर राजाको दे दिया। भोजन के विषय में पूछताछ होने पर भंडारी ने चोरों के चावलों का उल्लेख किया। चोरी करके ले जाते हुए चोरों से चावलों का बोरा भण्डार में जमा किया गया था और वही उत्तम किन्तु चोरी का चावल महात्माके सेवन करने से चोर-वृत्ति बन गई।

कहने का तात्पर्य यह है कि शुद्धता का प्रभाव मानव जीवन पर तत्काल होता है। भोजनकी शुद्धि मन पर तत्काल प्रभाव डालती है। सन्त, महात्मा, योगी भोजन की शुद्धि पर इसीलिये विशेष ध्यान रखते हैं।

अष्टांग योग में नियम के शुचिता ही शुद्धि है।

भक्त-पञ्चरत्न से—

गोपाल चरवाहा और श्री गुरु-वचन

प्रेषक—श्री केशव उपाध्याय कमया, देवरिया

अपने नाम के अनुसार कार्य करने वाला श्री गोपाल सीधा-सादा संसार और सत्यवादी चरवाहा था। जिसका मुख्य काम भगवान के नाम का जप करना और गौ चराना था उसका भरा-पूरा परिवार था, परन्तु वह यदाकदा अपने घर जाया करता था। उसकी धर्मपत्नी उसका भोजन जंगल में पहुंचा आया करती थी और वह वहीं जंगल में ही श्रीहरि नाम कीर्तन में मस्त रहा करता था। उसका यह स्वभाव बचपन से ही था और धीरे-धीरे अब उसकी अवस्था ५५ वर्ष के करीब पहुँच चुकी थी। सांसारिक किसी भी पदार्थ या भोग में उसकी प्रायः लिप्सा नहीं थी, यदि उसके मन में किसी वस्तु की लालसा थी तो बस, भगवान के दर्शन प्राप्त करने की। शायद यही कारण था कि वह सदैव श्रीहरि का नाम जपा करता था। उसके इस कार्य से उसकी बराबरी के उम्र वाले उससे मजाक करते थे और कहते थे—"यों राम राम रटने से वैकुण्ठ के विमान में स्थान नहीं मिलने को है।" एक दिन एक सन्त उसी रास्ते से जा रहे थे। उन्होंने मजाक उड़ाने वालों से कहा "सज्जनो आप लोग गलती पर हैं। जो श्री गुरु-प्रदत्त विधि से भगवान का पावन नाम लेता है, वह अनायास ही इस दुःखमय संसार से मुक्त हो जाता है। उसको बड़े बड़े राजा-महाराजाओं के सुख की तो बात ही क्या है, ब्रह्मलोक के सुख से भी अधिक सुख वाले, परमात्मा के परमधाम की प्राप्ति होती है। यदि यह बूढ़ा चरवाहा बिना समझे ही भगवान का नाम लेता है तो प्रभु के नाम की ऐसी महिमा है कि उनके नाम के प्रताप से परमधाम का सीधा मार्ग बताने वाले श्रीगुरु अवश्य मिल जायेंगे।

सन्त की वाणी का गोपाल पर कुछ विलक्षण ही असर हुआ। गोपाल ने सन्त के पैर पकड़ कर उन्हें गुरु-दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की। चरवाह गोपाल की बात सुनकर सन्त ने स्वाभाविक ढंग से कहा "देख भाई! मुझ से तो गुरु बनने का काम होगा नहीं, परन्तु तुझे गुरु अवश्य ही मिल जायेंगे। जैसे अनुभवी केवट के लिए बिना नाव नहीं चलती, उसी प्रकार भव-सागर की भयानक तरङ्गों से बचाकर जीवन-नौका का संचालन करने के लिए अनुभवी गुरु अवश्य चाहिए।" अवश्य

सुन, तुझको भी उपयुक्त सद्गुरु की शरण होकर अपनी जीवन-नौका की पतवार उन्हीं के हाथों में सौंप देना चाहिए। इसके पश्चात् तू बिना किसी भयके सुखपूर्वक और शीघ्र ही अपार संसार-समुद्रके परले-पार पहुँच जावेगा।

तदनन्तर गोपाल ने सन्त जी से पूछा, "महात्मन्! ऐसे गुरु की पहचान क्या है? वे कहां मिलेंगे?" सन्तजी ने कहा, "इसी जंगल के रास्ते से प्रायः अच्छे-अच्छे साधु-महात्मा, जिसमें तुम निवास करते हो, आया-जाया करते हैं। जिनके दर्शन से पापों की वासना नष्ट हो जाय, हृदय में सात्विक भाव उत्पन्न हों, जिनके शब्द सुनते ही मन में अत्यधिक आनन्द हो, जिनके चरण-स्पर्श से मन में भगवत-प्रेम की बिजली-सी दौड़ जाय बस, उन्हीं को अपना गुरु बना लेना।" इतना कहकर सन्त चलते बने।

अब गोपाल हमेशा श्रीहरि नाम जपते हुए चौराहे पर गाय छोड़कर आने जाने वाले साधु महात्माओं का इन्तजार किया करता था। किसी-किसी महात्मा के पीछे बहुत दूर तक जाता था और सन्त द्वारा बताई गई विधि से पहचानने की कोशिश करता था। अन्त में निराश होकर लौट आया करता था। इस क्रिया को वह नित्य कई बार करता था और इस प्रकार निराश होते-होते उसे पूरे १८० दिन का समय बीत गया, परन्तु अब भी वह नित्य इसी प्रकार इन्तजार करता है, परन्तु अब वह काफी अधीर हो गया था और चौराहे पर बैठकर इन्तजार कर रहा था। इसी बीच गोपाल ने देखा कि एक परम भागवत सन्त उसी ओर चले आ रहे हैं। महा पुरुष को दूरसे देखते ही उसके हृदय में आनंद छलकने लगा। अपनी कुछ विलक्षण स्थिति देखकर वह पुकार उठा—"अहा! मुझे भव-सागर से पार लगाने वाले, भगवान का दर्शन कराने वाले गुरुदेव आ रहे हैं। इतना कहकर उसने महात्मा को साष्टांग प्रणाम किया और दोनों चरणों में लिपट कर कहा- मुझे उपदेश दो गुरुदेव! मेरा उद्धार करो गुरुदेव! ऐसा किये बिना मैं आपका चरण नहीं छोड़ूंगा।" गोपाल की श्रद्धा देखकर संत का हृदय दया से भर आया। उन्होंने कहा—भाई! तू उठकर बैठ, मेरे पैर छोड़ दे, और अपने घर चल। किसी एकान्त पवित्र स्थान में तुझे दीक्षा दूंगा।" महात्मा ने कहा, "दीक्षा लेने के पूर्व तुझे एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी, कुछ व्रत धारण करने पड़ेंगे बता दूं, तुम बताओ वैसा करोगे कि नहीं।" गोपाल ने कहा, "नाथ मैं तैयार हूं, मुझे तो बस एक ही साधन बतला दो, मैं उसे तुम्हारी आज्ञानुसार प्राण पण से पूरा करूंगा।" गोपाल के निष्कपट वचनों से महात्मा जी द्रवित हो गये और गोपाल विधिवत् दीक्षा दी। महात्मा जी ने कहा, "बेटा! अब से तुझे जो खाना

हो पहले श्री गोविन्द भगवान को निवेदन करके पीछे खाना।" इस, इसी एक साधन से तुम पर भगवान की कृपा हो जायगी। देख! ऐसा करने में कभी भूलना नहीं। ईश्वर-कृपा से तेरा इसी में कल्याण हो जायगा। इतना कहकर गोपाल का दूध ग्रहण कर महात्मा वहां से विदा हुए। गोपाल ने भी उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम करके अपना रास्ता लिया।

श्री गुरु महाराज द्वारा बतलाया गया साधन बारम्बार गोपाल के मन में घूम रहा था। इस दीक्षा और साधनकी कहानी गोपाल की घरवाली तथा उसके परिवार के किसी सदस्य को पता नहीं था। गोपाल की स्त्री सदैव की भांति आज भी भोजन रखकर चली गयी। भोजन की सामग्रीको देखते ही गोपाल को अपने गुरु महाराज की आज्ञाकी स्मृति ताजा हो गई। गोपाल ने भोजन सामग्री में तुलसी-पत्र रखा और आंखें बन्द करके प्रार्थना करने लगा, "हे गोविन्द! लो, लो यह भोजन करो नाथ! गुरुदेव आज्ञा दे गये हैं कि तुम्हारे भोजन के बाद जो प्रसाद बचे, उसका मैं सेवन करूं। इसलिये हे नाथ! आओ, अपने गोपाल की सांग-आओ प्रेम से खाओ।" इसने आगे कहा, प्रभु! यद्यपि आज मुझे भूख ज्यादा लगी है, परन्तु यदि तुम नहीं खाओगे तो मुझे भूखा ही रहना पड़ेगा। इस प्रकार प्रार्थना करते-करते सायंकाल हो गया, परन्तु न गोविन्द ने आकर भोजन किये और न गोपाल को प्रसाद ग्रहण करने को मिला। अन्त में वह भोजन लेकर गया और जंगल में फेंक आया।

अब यह गोपाल का नैतिक कार्य बन गया था। घर से भोजन का आना, भोजन करने के लिए भगवान से अपने गुरु द्वारा बताई विधि से प्रार्थना करना और गोविन्दके भोजन न ग्रहण करने पर भोजन जंगल में फेंककर उपवास करना। इस प्रकार गोपाल ने कोई भी चीज बिना भगवान के भोजन कर लेने से उसे नित्य उपवास करना पड़ता था और वह दिन-प्रतिदिन काफी कमजोर होता जा रहा है। पति की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई दुर्बलता देखकर पत्नी उससे कारण पूछती, परन्तु वह कोई जवाब नहीं देता। वह बेचारी नित्य भोजन रख जाती, गोपाल श्री भगवान से गुरुदिष्ट विधि से भोजन करने के लिए प्रार्थना करता, परन्तु रोज-रोज निराशा ही हाथ लगती। इतना होने पर भी उस श्रद्धालु सरल नरबच्चे ने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि गुरु की आज्ञानुसार भगवान को भोग लगाये बिना रोटी नहीं खाऊंगा। भूख के मारे प्राण छटपटाता था, परन्तु वह अपने व्रत पर प्रसन्नता से अटल था। वह प्रतिदिन यह विचार करता कि इस संसार में आकर आगे-पीछे एक दिन मरना तो है ही, फिर गुरु महाराज की आज्ञा का उल्लंघन क्यों करूं? गुरु महाराज की आज्ञा निश्चय

ही सत्य है। श्री भगवान के दर्शन अवश्य ही होंगे। जो कुछ भी हो गुरुदेव की आज्ञा कभी नहीं टालूँगा।

आज गोपाल के उपवास का सत्ताईसवाँ दिन है। अब उसमें चलने-फिरने की शक्ति भी नहीं रह गई है। उसका पेट अन्दर घुस गया, आँखें में गड्ढे पड़ गये, खड़े होने में चक्कर आ रहा है और खड़ा नहीं हुआ जाता। समय होने पर गोपाल की पत्नी भोजन लेकर आई, उसके सामने रखकर उसकी आज्ञा से वहाँ से हट गई। वह भोजन को सामने रखकर गुरु-प्रदत्त विधि से सदा की भाँति भगवान का ध्यान करके प्रार्थना करने लगा। अब उससे बैठा नहीं रहा गया, अतः वह आसन पर लेट कर गोविन्द को पुकारने लगा। उसके मन में जितना बल था, वह सारा का सारा बाहर निकालकर प्रार्थना में लग गया। गोपाल के मन में इस बात का निश्चय हो चुका था कि आज की प्रार्थना अन्तिम है। इस प्रकार प्रार्थना करता हुआ वह बारम्बार प्रणाम करने लगा। आज श्रीहरि के दर्शन के लिए उसके मनमें अभूतपूर्व उत्कण्ठा और व्याकुलता थी। मालूम होता था कि यदि अभी-अभी भगवान दर्शन नहीं देते तो उसके प्राण छूट जायेंगे। तदनंतर श्रीहरि ने अपनी विश्वमोहनी छवि से गोपाल के सामने प्रकट हो गये। अकस्मात उसके शिथिल अंग मजबूत हो गये। शरीर में एक नवीन चैतन्यता का संचार हो गया। गोपाल ने सामने देखा कि भगवान का वही सुन्दर स्वरूप है, जैसा गुरुदेव ने वर्णन किया था। चकित होकर उसने एक बार आँखें बन्द कर लीं, परन्तु ध्यान में भी उसे वही रूप दिखाई दिया जो खुली आँखों में था। वह प्रभु के चरणों में लिपट गया और उसका शरीर पुलकित हो गया।

भक्तभावन भगवान् ने भोले भक्त को उठा कर गोद में ले लिया और अपने मुरा-मुनि वांछित कर-कमलों से उसके आँसू पोंछते हुए मुख-कमल से अमृत बरसाते हुए कहा—"मेरे प्यारे गोपाल तू अधीर क्यों हो रहा है? देख, मैं तेरे प्रेमके लिए तेरी निवेदन की हुई रोटियाँ खाता हूँ। मुझे हृदय के सच्चे भावसे प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ ऐसा ही अन्न चाहिए। मैं नित्य तुम्हारा निवेदन किया हुआ भोजन करता हूँ, यह प्रसाद जो बचा है, ले जा और अपना भोजन नित्य हमें खिलाकर ही खाना।" इतना कहकर भगवान हँसते हँसते अन्तर्धान हो गये। गोपाल काफी प्रसन्न मुद्रा में, "जय-गुरुदेव, जय गोविन्द, जय गुरुदेव जय गोविन्द" का भजन गाने लगा।

श्री गुरुवचन का पालन करने से गोपाल की अनन्त क्षुधा-पिपासा सदा के लिए शांत हो गई। श्रीहरिनाम का आश्रय, गुरु-वचन में एकान्तिक श्रद्धा रखने से ही गोपाल चरवाहा परम कृपालु भगवान् के दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो गया।

पृष्ठ १७ का शेष→ कुण्डलिनी जागरण

गोते में जागता है। इस विरोधाभास का दर्शन हमने प्रत्यक्ष देखा है तथा सन्तों के चरित्र में देखने को मिलता है। कभी होगा हुई तो इसका वर्णन फिर किया जायगा।

गुरु-प्रदत्त मन्त्र जपते रहने से भी कुण्डलिनी जागृत होती है 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्।' अर्थात् अर्थ की भावना करते हुए (ऋषि, देवता, छन्द, वस्तु) मन्त्र जप करते रहने से जब मन्त्र मनोमय हो जाता है, तब मन की हिलोर से मूलाधार स्थित प्राणवायु से प्रायः अग्नि प्रज्वलित कर कुण्डलिनी जगा देती है। रुद्रयामल तन्त्र में कहा है कि मन्त्रोंका उद्गम स्थान मूलाधार चक्र है—

मूलत्वात्सर्व मंत्राणां मूलाधार समुद्भवम्'

अतः जो मन्त्र सिद्धि का इच्छुक है वह योग विधि से मन्त्र जप करे, उससे कुण्डलिनी जागरण होती है।

मंत्र सिद्धिः इच्छुको यो स वै योगं समभ्यसेत्, एकस्यैव प्रसादेन चैतन्या कुण्डलिनी भवेत्। न योगेन बिना मंत्रो न मंत्रेण बिना हि सः, द्वयोरभ्यास योगेन ब्रह्म संसिद्धि कारकम्॥

ब्रह्मचर्य साधना से भी कुण्डलिनी जागरण होता है। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है, उसका वीर्य समस्त शरीर में व्याप्त होकर शरीर के नाड़ी मण्डल को बल देता है तथा वह सुखपूर्वक आसन पर जमकर बैठकर जितासन तथा जितश्वास होकर ब्रह्म में रमण करने के स्वभाव वाला बन जाता है। वीर्य के ऊर्ध्वगमन से बिन्दु-जय तथा कुण्डलिनी प्रबोध हो जाता है। योग-दर्शन ब्रह्मचर्य की महिमा प्रतिपादित करते हुए कहता है—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। यस्य लाभात् अप्रतिघात गुणानुत्कर्षयति। सिद्धश्च दिनयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति।

अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करने से साधक अपने शरीर में अलौकिक शक्तियों का आकर्षण कर लेता है। प्रकृति का यह नियम है कि सरिता जल जल-निधि महँ जाई।' अल्प शक्ति अपरमित शक्ति की ओर खिचकर चली जाती है। शक्ति का आकर्षण कर लेने पर उसमें इतनी सामर्थ्य विकसित हो जाती है कि उसके सान्निध्य में आकर उद्दण्ड छात्र भी विनयी हो जाते हैं। उन शिष्यों में वह ज्ञान की शक्ति का सञ्चार कर सकता है। आजकल विद्यालयों में उन्हीं अध्यापकों से छात्र उद्दंडता का व्यवहार करते हैं जो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नहीं करते। ऐसे अध्यापक लाख बार कहें तो भी छात्रों में प्रबोध नहीं होता। यदि उनमें ब्रह्मचर्य की साधना हो तो शिष्य विनयी तथा ज्ञानयुक्त सबल हो जायेंगे। ध्यानबिन्दु-उपनिषद् में इस सिद्धान्त पुष्टि मिलती है—

ब्रह्मचारी मिताहारी योगी योगपरायणः। अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्रकार्या विचारणा॥ कन्दर्ध्वं कुण्डलीशक्तिः सयोगी सिद्ध भाजनम्॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला पेट का १/२ भाग अन्न से तथा १/४ भाग जल से पूरित कर १/४ भाग वायु के लिए खाली छोड़ने वाला मिताहारी साधक योग साधना में तत्पर हो जाता है, तो एक वर्ष के अन्दर ही सिद्ध हो जाता है तथा मूलाधार पर कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण हो जाता है।

विभिन्न आसनों का दीर्घकाल तक निरन्तर आदरपूर्वक गुरुपदिष्ट रीति से अभ्यास करनेसे कुण्डलिनी जागृत होती है। सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, कूर्मपीठासन, सिंहासन, बद्धपद्मासन, भद्रासन, पश्चिमोत्तान, भुजंगासन तथा खेचरी-महामुद्रा बज्रोली शक्तिचालन, नभोमुद्रा, शाम्भवी, योनिमुद्रादि मूलबन्ध, उड्डानबन्ध एवं जालन्धरबन्ध के सतत अभ्यास से कुण्डलिनी-शक्ति जागृत हो जाती है।

गुरु कृपा सबसे उत्तम साधन है, जिससे कुण्डलिनी शक्ति नर्तन करने लगती है, परन्तु सामर्थ्यवान् गुरु बड़ी तपस्या से मिल पाते हैं। यदि जानी तपस्या नहीं है तो मिलने पर उन पर श्रद्धा नहीं हो पाती। श्रद्धा के अभाव में सर्व सामर्थ्यवान् सद्गुरुदेव सामान्य व्यक्ति लगते हैं। उनसे कृपा की इच्छा मन में नहीं होती। जिसके पूर्व जन्म की कुछ कमाई है, ऐसे जिज्ञासु को गुरुदेव खुद ढूँढकर अपना स्वरूप प्रकट कर एक झलक दिखाकर उनके मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और उसकी सेवा, भक्ति, तपस्या तथा उसके शील से प्रसन्न होकर उसे निहाल कर देते हैं। वे उस सुख का दान देते हैं जिसे मीरा ने कहा है—'वस्तु अमोलक दी मेरे सद्गुरु करि किरपा अपनायो।' सिद्ध योगी गोरक्षनाथ का मत है—

कथनात् शक्ति पातात्वा सद्गो पादावलोकनात्,
प्रसादात्सद्गुरोः सम्यक् प्राप्ते परमं पदम्।

अर्थात् सद्गुरु अपने उपदेश से या शक्तिपात दीक्षा से साधक में शक्ति-संचालन कर देता है। श्रद्धायुक्त मन से सद्गुरु के चरण-कमलों का ध्यान करने से सद्गुरु को प्रसन्न कर साधक परम कल्याण का भाजन होता है। शब्द जाल में पारङ्गत तर्क और विश्लेषण प्रवीण गुरु एक ढूँढने पर हजार मिल जायेंगे, किन्तु ऐसे योगी गुरु मिलने कठिन हैं जो चुम्बक की तरह हैं। जैसे मैग्नेट के सम्पर्क से लोहा चुम्बक बन जाता है, इसी तरह जिन गुरुओं में सिद्धयोगी गोरक्षनाथ के कथित लक्षण मिलते हैं वे ही दूसरों का कल्याण कर सकते हैं।

वाङ्मात्राद्वाथ दृक् पातात् यः करोति च
तत्क्षणात्,
प्रस्फुट शाम्भवं वेद्यं स्वसंवेद्य पर पदम्।
करुणास्खण्डपातेन छित्वा पाशाष्टकं शिशोः,
सम्यगानन्द जनकः सद्गुरुः सोऽभिधीयते।

(गोरक्ष० उप० ६६-७०)

अर्थात् जो अपनी वाणी के कथन मात्र से या दृष्टिपात से उसी क्षण समरसता के आनन्द की आन्तरिक अनुभूति करा दे, अपनी करुणा की कैंची से शिष्य के आठों पाश काटकर उसे शाश्वत आनन्द की अनुभूति करा दे। वास्तव में वही सद्गुरु है। साररूप में गुरु गोरक्षनाथ कहते हैं कि करोड़ों शास्त्रों का सार प्रस्तुत करने से क्या लाभ है? गुरुदेव जी की कृपा से बिना चित्त-वृत्तियों का निरोध होकर परा सच्चिदानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती—

किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रकोटि शतेन च,
दुर्लभा चित्त विश्रान्तिः बिना गुरुकृपा पराम्।
दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्व दर्शनम्,
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणा बिना।

(गोरक्ष० उप० १०१-०२)

अर्थात् साधक की यह सामर्थ्य नहीं कि विषयाकार मन को अन्तर्मुखी ब्रह्मानन्दलीन बनाकर सहज निज सुख की अनुभूति कर सके। उसकी साधना में भ्रम, सन्देह तथा ममत्व ये तीन विघ्न कभी न कभी उसको विचलित कर ही देंगे। सती के मन में सन्देह हो गया कि श्रीराम सच्चिदानन्द कैसे हो सकते हैं? जो असत् मृत के पीछे दौड़े वह सत् कैसा? जो जड़, लता, तरु, पर्वतों से रो-रोकर पूछे—'तुम देखी सीता मृगनयनी।' वह चेतन कैसा? जो अपनी स्त्री के विरह वन-पर्वतों में रोता फिरे, वह आनन्द कैसा? उनके इस सन्देह ने उन्हें शिव से अलग कर दिया और दूसरे जन्म में तपस्या से सन्देह, भ्रम तथा अहङ्कार को भस्म कर देने पर उन्हें शिव की प्राप्ति हुई। प्रत्येक साधक की यही परिणति है। यदि गुरु न मिले तो तपस्या-रत रहकर अपने मार्ग पर आरूढ़ रहना चाहिए। तपस्या से अपने अन्दर बैठा हुआ गुरु सहायक हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश है—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्,
आत्मैवह्यात्मनः बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।

अर्थात् अपने प्रयत्न से ही आत्मा का उद्धार करना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में अपनेको दुःखी न तो बनाना चाहिए, क्योंकि शुभ सङ्कल्पयुक्त आत्म-बल अपना हितैषी है और अशुभ मन ही अपना शत्रु है। तपस्या-परायण साधक को सिद्धगुरु स्वयं ढूँढ़ते फिरते हैं। रामकृष्ण परमहंस जी कहा करते थे—'खेत जुता है तो बीज कहीं न कहीं से आकर उसमें गिर पड़ेगा।' मनमाने ढङ्ग से साधना करने पर रोग सुख के स्थान पर रोग का कारण बन जाता है। कहा भी है—

देखा-देखी साधै योग, छीजै काया बाढ़ै रोग।

तीर्थराज पुष्कर (राजस्थान में एक ऐसे महात्मा थे, जिन्होंने कुण्डलिनी-जागरण के लिए गौ की तरह ईंटों पर बैठकर गोबर-बत्ती की गर्मी से मूलाधार-चक्र को काफी सेक दिया। उनका कहना था कि इससे उनकी कुण्डलिनी जग गई, किन्तु भगन्दर हो गया। किसी योगी ने जब समझाया तब जान बच पायी। अतः शास्त्र या गुरुदेव के निर्देशन में साधना करने पर अभीष्ट फल की सिद्धि होती है। कुछ लोग हठयोग का अर्थ जिद्-पूर्वक काम करना लगाकर मनमानी कर पछताते हैं।

दया धर्म हिरदे बसै बोले अमृत बैन। तेई ऊँचे जानिए जिनके नीचे नैन॥
सुमिरन ऐसा कीजिए दूजा लखै न कोय। ओंठ न फरकत देखिए प्रेम राखिए गोय॥

—बाबा मलूकदास

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान-योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्विक दान तथा इन्द्रियों का दमन, भगवत्-पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंके पठन-पाठन-पूर्वक, भगवत् के नाम और गुणोंका कीर्तन तथा स्वधर्म-पालन के लिए कष्ट सहन करना एवं शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता । तथा :

× × ×

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥

मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमानका त्याग एवं अन्तःकरण की उपरामता अर्थात् चित्तकी चंचलता का अभाव और किसी की भी निन्दादि न करना तथा सब भूतप्राणियों में हेतु-रहित दया, इन्द्रियों का विषयों के संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना और कोमलता तथा लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव ।

× × ×

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर भीतर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रुभाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव, यह सब तो हे अर्जुन ! दैवी-सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं । और

× × ×

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥

हे पार्थ ! पाखण्ड, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान यह सब आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुषके लक्षण हैं । —श्रीमद्भगवद्गीता

❀ श्री सद्गुरुदेव जी के आगामी योग-प्रचार कार्यक्रम ❀

ता० १३-११-७७ को	श्री सिद्धगुफा से नूरपुर (हि० प्र०) के लिए प्रस्थान
ता० १४-११-७७ से ता० १७-११-७७ तक	योग-प्रचार कार्यक्रम नूरपुर (हि० प्र०) पता-C/o श्री कृष्णचन्द्र शर्मा, डाक मैनेजर स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, नूरपुर (कांगड़ा)
ता० १८-११-७७ को	मण्डी के लिए प्रस्थान
ता० १९-११-७७ से ता० २२-११-७७ तक	योग-प्रचार कार्यक्रम मण्डी (हि० प्र०) पता-C/o श्री हरीसिंह स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, मण्डी (हि० प्र०)
ता० २३-११-७७ को	मण्डी से दिल्ली के लिए प्रस्थान
ता० २४-११-७७ से ता० ३०-११-७७ तक	योग-प्रचार कार्यक्रम दिल्ली श्रीसिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र शाखा दिल्ली आर० के० पुरम् सेक्टर-४ वाटर पम्प हाउस के पास, नई-दिल्ली-२२

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक संरक्षक तथा संरक्षक
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

निष्काम-कर्म

कर्मयोग मार्ग का सिद्धान्त यह कदापि नहीं, कि कोरा आत्म-ज्ञान ही इस संसार में परम साध्य वस्तु है; यह तो सन्यास मार्ग का सिद्धान्त है, जो कहता है कि संसार दुःखमय है, इसलिए उसको एकदम छोड़ ही देना चाहिए। भिन्न-भिन्न मार्गों के इन सिद्धान्तों को एकत्र करके गीता के अर्थ का अनर्थ करना उचित नहीं है। स्मरण रहे, गीता का कथन है कि ज्ञान के बिना केवल ऐश्वर्य सिवा आसुरी संपत् के और कुछ नहीं है। इसलिए यही सिद्ध होता है कि ऐश्वर्य के साथ ज्ञान और ज्ञान के साथ ऐश्वर्य अथवा शान्ति के साथ तुष्टि हमेशा होना चाहिए। ऐसा कहने पर कि ज्ञान के साथ ऐश्वर्य होना आवश्यक है। कर्म करने की आवश्यकता आप ही आप उत्पन्न होती है। क्योंकि मनु का कथन है "कर्मणयारभमाणं हि पुरुष श्रीनिषेवते।" कर्म करने वाले पुरुष को ही इस जगत् में श्री अर्थात् ऐश्वर्य मिलता है और प्रत्यक्ष अनुभव से भी यही बात सिद्ध होती है पर यह निष्काम-कर्म ही होना चाहिए।

—महात्मा श्री तिलक

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कला, बाजार्ज, आगरा-१